

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182973

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—831—5-8-74—15,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H 81/c49M** ✓ Accession No. **H 3967**

Author **राजेश्वर प्रसाद यदुर्वेदी** →

Title **महाकवि बिहारी लाल**

This book should be returned on or before the date last marked below.

महाकवि विहारीलाल

[विवेचन, विश्लेषण और अध्ययन]

लेख

राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०

भारती साहित्य मंदिर

फव्वारा दिल्ली-६

भारती साहित्य मन्दिर	
(एस चंद एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)	
रामनगर	नई दिल्ली-१
फव्वारा	दिल्ली-६
भाई हीरा गेट	जालन्धर
हज़रतगंज	लखनऊ
लैमिंगटन रोड	बम्बई
गणेशचन्द्र एवेन्यू	कलकत्ता
माउण्ट रोड	मद्रास

मूल्य : १'७५

मुद्रक :

आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजमण्डी, आगरा-२

भूमिका

महाकवि बिहारीलाल की अकथ कथा की भाँति उनके सम्बन्ध में उपलब्ध साहित्य भी अकथ और अपार है। विद्वानों ने बिहारीलाल के विषय में अनेक विद्वत्तापूर्ण एवं गवेषणापूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। सामान्य पाठक के लिए, विशेषकर परीक्षा पर दृष्टि रख कर अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए, यह सम्भव नहीं है कि वे इस समस्त उपलब्ध सामग्री का अध्ययन, आलोड़न एवं आकलन कर सकें।

परीक्षार्थियों के लाभार्थ भी अनेक अध्यापकों एवं आलोचकों ने बिहारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उपयोगी सामग्री प्रस्तुत की है, और प्रत्येक का अपना निजी महत्त्व है। मेरा यह प्रयास भी अपने ढंग का नया प्रयास है। मैंने “नाना पुराणनिगमागमसम्मतं यद्-क्वचिदन्यतोऽपि” पद्धति का अवलम्बन किया है। बिहारीलाल पर लिखे गए प्रायः समस्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करके ‘क्वचिदन्यतोऽपि’ का निर्वाह किया है। इससे पाठकों को दो लाभ होंगे। उनको यह विदित हो जाएगा कि बिहारीलाल के सम्बन्ध में कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं, तथा विषय विशेष के सम्बन्ध में अधिकारी विद्वानों का क्या मत है। पुस्तक लिखते समय मैं “तेरा तुझको सौंपता क्या लागत है मोर” की भावना द्वारा ही अनुप्राणित रहा हूँ ?

इसके पूर्व मैंने ‘गोस्वामी तुलसीदास’ के सम्बन्ध में इसी प्रकार की पुस्तक प्रस्तुत की थी। पाठकों ने जिस सद्भावना के

साथ उसका स्वागत किया, उसी से उत्साहित होकर मैं इस पुस्तकमाला को पूर्ण करने का साहस कर सका हूँ। अतः यह तृतीय पुष्प, जैसा जो कुछ है, पाठकों की सेवा में सप्रेम समर्पित है। आशा है बिहारीलाल के अध्येता पाठक के प्रति यह पुस्तक अपने कर्तव्य का सम्यक् निर्वाह कर सकेगी।

प्रिन्सिपल

उपाधि महाविद्यालय

पीलीभीत

राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

अनुक्रमणिका

१. आविर्भाव काल			१
२. जीवन वृत्त			७
३. बिहारी सतसई की टीकाएँ			१३
४. रीति-काल [ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उसकी विशेषताएँ]			२४
५. सतसई की परम्परा और बिहारी ✓			४४
६. बिहारी रीतिकवि अथवा रीतिबद्ध काव्य कवि ?			५३
७. बिहारी का शास्त्रीय दृष्टिकोण			६०
८. भाव-व्यंजना			६४
९. शृङ्गार रस का निरूपण			६८
१०. प्रेम-भावना			८४
११. भक्ति-भावना ✓			८६
१२. जातीय-भावना			९५
१३. जीवन-दर्शन			९७
१४. प्रकृति-वर्णन			१०४
१५. कला पक्ष [भाषा, शैली, अलंकार, छन्द, ' ' सूक्ति एवं अनुभाव]			१०६
१६. बहुज्ञता			१२६
१७. सफल मुक्तककार ✓			१३०
१८. सफलता एवं लोकप्रियता के कारण काव्यगत विशेषताएँ,			१३८
१९. महत्त्व तथा हिन्दी काव्य जगत में स्थान ✓			१४४
२०. महत्त्वपूर्ण प्रश्न			११६
२१. सहायक ग्रन्थ सूची			१५३

: १ :

आविर्भाव काल

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया हुआ हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन प्रायः सर्वमान्य हो गया है। यद्यपि उसको सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता है, तथापि वह बहुत कुछ युक्तिसंगत एवं विवेकपूर्ण है। उसके अनुसार संवत् १७०० से संवत् १९०० तक का समय रीतिकाल माना जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि महाकवि बिहारीलाल रीतिकाल के एक प्रमुख कवि हैं।

राजनीतिक परिस्थितियाँ—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने शोध-प्रबन्ध हिन्दी काव्य में शृंगार-परम्परा और महाकवि बिहारी के अन्तर्गत बिहारी के युग का विवेचन करते हुए लिखा है, “महाकवि बिहारी का आविर्भाव (सन् १५९५ ई०) उस युग में हुआ, जब कि मुगल साम्राज्य अपने पूर्ण यौवन-काल में था। सम्राट अकबर (मृत्यु सन् १६०५), जहाँगीर (मृत्यु सन् १६२६) और शाहजहाँ (मृत्यु सन् १६६६) जैसे बादशाहों के शासन-काल में उसका यौवन व्यतीत हुआ।” जहाँ अकबर ने × × × समस्त उत्तरी भारत में एक ऐसा शान्तिमय वातावरण तैयार किया, जिसमें साहित्य और कलाओं का विकास हो सके, उसके परवर्ती शासकों, जहाँगीर और शाहजहाँ, की रसिक प्रवृत्तियों ने कला और साहित्य के उद्यान को और भी अधिक उन्नत किया। × × × कविता करना या अपने आश्रय में कवियों को रखना, उस युग के सामन्त वर्ग में एक फैशन की भाँति प्रचलित था।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि उपर्युक्त कालावधि के अन्तर्गत मुगल-साम्राज्य की अवनति और उसके क्रमिक विनाश का इतिहास आरम्भ हो जाता है। उक्त कालावधि के उत्तरार्द्ध का सविस्तर विवेचन करते हुए डा० नगेन्द्र ने ‘रीतिकाल की भूमिका’ के अन्तर्गत लिखा है कि, “संवत् १७६४ के बाद का भारतीय इतिहास घोर राजनीतिक पतन और अव्यवस्था का

इतिहास है—यह अशान्ति और अव्यवस्था क्रमशः बढ़ती ही गई और अंत में संवत् १९१४ के गदर में जाकर इसका पूर्ण पर्यवसान हुआ ।”

राजनीतिक स्थिति का विवेचन करते हुए डा० नगेन्द्र ने दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं । यथा—

- (१) यह राजनीतिक अधःपतन का युग था । शासक-समुदाय में मौलिक प्रतिभा निःशेष हो चुकी थी । स्वयं औरंगजेब भी सफल राजनीतिज्ञ नहीं था । अकबर और उसके सचिव आदि की राजनीतिक योग्यता की इस युग में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी ।
- (२) शाहजहाँ ने अपने शासन-काल के उत्तरार्द्ध में जिस धार्मिक असहिष्णुता का श्रीगणेश कर दिया था—औरंगजेब ने उसे पूर्णता को पहुँचा दिया । परिणामस्वरूप हिन्दू और मुसलमानों में पार्थक्य की एक तीखी चेतना उत्पन्न हो गई थी । दोनों ही निर्वीर्य हो चले थे । हिन्दू पदाक्रान्त थे—मुसलमान विलास-जर्जर ।

सामाजिक परिस्थितियाँ—डा० रामसागर त्रिपाठी ने ‘बिहारी मीमांसा’ के अन्तर्गत बिहारी की कविता के माध्यम से तत्कालीन वातावरण का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लिखा है, “बिहारी के समय की सामाजिक स्थिति के विषय में सबसे पहले जो बात ध्यान में आती है, वह है समाज का वर्गों में विभाजित होना । × × × धनिक लोग अपने सुख-साधन के लिए जिस दलित-जाति पर आश्रित रहते थे, उसे उठाने और सुधारने की ओर उनका ध्यान नहीं था । अपितु इस धनिक वर्ग में गिरी हुई जाति के प्रति एक घृणा-सी उत्पन्न हो गई थी । ऊँच-नीच का भेद-भाव इतना अधिक था कि छोटे आदमी इस योग्य ही नहीं माने जाते थे कि उनसे बड़े आदमियों का कुछ भी काम चल सके ।”

डा० नगेन्द्र ने ‘रीतिकाव्य की भूमिका’ में उक्त स्थिति का सजीव स्वरूप इन शब्दों में व्यक्त किया है—“आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सारा समाज दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता था—एक उत्पादक वर्ग और दूसरा भोक्ता वर्ग । उत्पादक वर्ग में कृषक समुदाय और श्रमजीवी थे । × × × भोक्ता वर्ग, सम्राट के परिवार और दरबारों से लेकर उनके नौकर, दर और दासों तक फैला हुआ था । यह वर्ग राज्य की शक्ति था—अतएव उत्पादक वर्ग पर. इसका पूर्ण प्रभुत्व था—सामाजिक स्थिति भी स्वभावतः

इनकी श्रेष्ठतर थी। इन दोनों के बीच बहुत बड़ा अन्तर था—शासक और शासित—शोषक और शोषित का।”

इस स्थिति के अतिरिक्त सामाजिक परिस्थिति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें भी महत्त्वपूर्ण हैं—^१

- (क) गांवों की दशा अच्छी नहीं थी।
- (ख) ग्रामीण लोग अपनी स्थिति से सन्तुष्ट थे।
- (ग) नागरिक जीवन अत्यन्त समृद्ध और सुसम्पन्न था।
- (घ) समाज में अन्ध-विश्वास का पर्याप्त प्रसार था।

डा० गणपतिचन्द्र गुप्त के इन शब्दों में मानो तत्कालीन हिन्दू-समाज का स्वरूप सजीव हो उठता है। “इस युग के हिन्दू-समाज में न तो धार्मिक कट्टरता ही थी और न राजनीतिक प्रभुता ही—फलस्वरूप उसका जीवन लक्ष्य-विहीन हो गया था।”

धार्मिक परिस्थितियाँ—धर्म की स्थिति वस्तुतः बहुत ही दयनीय थी। डा० नगेन्द्र के शब्दों में, “धर्म का तात्त्विक विकास एकदम रुक गया था और उसके स्थान पर भक्ति के बाह्य विलास अत्यन्त समृद्ध हो गये थे।”

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ—कवि और कलाकार अमीरों, रईसों, राजाओं या वादशाहों के आश्रय में रहते थे।

वादशाहों और राजाओं के महलों में इन्द्रसभा जुड़ी रहती थी। डा० नगेन्द्र के शब्दों में, “मुगल अन्तःपुर का वैभव इन्द्रभवन को मात करता था। × × मदिरा और प्रमदा के अतिरिक्त विलास के अन्य साधन भी प्रचुर मात्रा में वर्तमान थे। × × × देश की परिस्थिति ज्यों-ज्यों बिगड़ती गई, त्यों-त्यों विलास के ये साधन भी अधिक अस्वस्थ होते गये, जिससे समाज का मानस पूर्णतः विकृत हो गया।”

नैतिक अधोगति उपर्युक्त परिस्थितियों का आवश्यक परिणाम था। बेईमानी और रिश्वत का वाजार गरम था। घोर भाग्यवाद के फलस्वरूप नैराश्य का साम्राज्य था। डा० नगेन्द्र के शब्दों में, “वास्तव में इस सम्पूर्ण युग का नैराश्य का गहन अंधकार आच्छादित किये हुए थे।” इस युग का बौद्धिक स्तर ही निम्न था। हिन्दू और मुसलमान दोनों का बौद्धिक ह्रास बढ़े

वेग के साथ हो रहा था। फारसी साहित्य का ह्रास तो वस्तुतः शाहजहाँ के समय में ही आरम्भ हो गया था। मुगल-वैभव का युग कला के वैभव का युग था। इस समय ललित और उपयोगी दोनों ही प्रकार की कलाएँ चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुई। आलोच्य काल के अन्तिम चरण तक मौलिक प्रतिभा का ह्रास हो चुका था। इनमें केवल विलास की रमणीयता रह गई थी। स्थापत्य कला, चित्र कला तथा संगीत कला—प्रत्येक की प्रवृत्ति मौलिक उद्भावना की ओर न होकर अलंकरण और रसीलेपन की ओर हो गई थी।

शाहजहाँ की प्रदर्शनवृत्ति से प्रेरणा प्राप्त कर अलंकरण तथा प्रदर्शन का स्वर उस युग में प्रधान हो गया। रीतिकाल का आरम्भ शाहजहाँ के शासन-काल के उत्तरार्द्ध से होता है। “प्रदर्शन प्रधान, रीतिबद्ध काव्यशैली तथा काव्य में शृंगारपरक जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति का श्रेय काफी सीमा तक इस युग में प्रधानतः इसी प्रदर्शनवृत्ति को है।”^१

शाहजहाँ के शासनकाल की परिस्थितियों का विवेचन करते हुए श्रीमती डा० सावित्री सिन्हा ने लिखा है, “शाहजहाँ की यशलाभ की महत्त्वाकांक्षा तथा दारा की सहिष्णुता के फलस्वरूप शाहजहाँ के शासनकाल में भारतीय कला तथा साहित्य को संरक्षण प्राप्त हुआ और मुगल दरबार में पोषित दरबारी काव्य का गहरा प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ने लगा। जीवन के व्यापक उपादानों को छोड़कर वह राजप्रशस्ति और शृंगार वर्णन तक ही सीमित रह गया। पांडित्य प्रदर्शन के लिए समसामयिक भारतीय ईरानी काव्य परम्परा ने फारसी की प्राचीन परम्पराओं से प्रेरणा ग्रहण की। × × × फारसी काव्य की विलासमयी नायिकाओं की तुलना में नायिका भेद की श्रेणियों में बद्ध नारी सौन्दर्य को ही रखा जा सकता था।”^२

जहाँ मुगल दरबार में भारतीय ईरानी काव्य परम्परा को प्रश्रय मिला, वहाँ राजस्थान के नरेशों तथा सामंतों की छत्रछाया में हिन्दी कविता का दरबारी रूप पनपा। ओरछा, कोटा, बूंदी, जयपुर, जोधपुर और यहाँ तक कि

१. पृ० सं० ४, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सम्पादक डा० नगेन्द्र, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण।
२. पृ० सं० ५, वही।

महाराष्ट्र के राजदरबारों में भी वही प्रदर्शनप्रधान और शृंगारपरक जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति में काव्यधारा चलती रही ।

मुगल आक्रमणकारियों के भय से वृन्दावन और गोवर्धन के मन्दिर खाली हो गये । सिसौदिया वंश के राजसिंह की कृपा से सिहोर में नाथद्वारा की स्थापना हुई और राजस्थान वैष्णवधर्म का केन्द्र बन गया ।

औरंगजेब के बाद हिन्दू राजे और भी अधिक विलासी बन गये । इन कारणों से काव्य में मौलिकता और नवीन उद्भावनाओं का अभाव हो गया । इस स्थिति के निष्कर्ष रूप श्रीमती डा० सावित्री सिन्हा ने ठीक ही लिखा है, “विवेक-हीन विलास इस युग के जीवन का प्रधान स्वर हो गया था । यही कारण है कि राजाश्रित कवियों की वाणी वैभव और विलास की मदिरा पीकर बेसुध हो उठी ।”^१

कला की दशा—जहाँगीर और शाहजहाँ के समय की कलाकृतियों को देखकर हम सहज ही जान लेते हैं कि स्थापत्य कला के क्षेत्र में रीतिसाहित्य की प्रवृत्तियाँ समानान्तर रूप में चलती रही थीं । परम्पराबद्ध शैली, अलंकरण की अतिशयता, चमत्कारवृत्ति तथा अनुदिन शृंगारी और रोमानी वातावरण की सृष्टि का प्रयास, ये सभी प्रवृत्तियाँ रीतियुगीन साहित्य में भी थोड़ा-बहुत अन्तर के साथ विद्यमान है ।^२ तत्कालीन संगीत की शैली में भी चमत्कार-सृष्टि की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । इतना ही नहीं, शृंगारिक भावनाओं को उद्दीप्त करना संगीतज्ञों का मुख्य उद्देश्य बन गया था ।^३

“स्थूल की सूक्ष्म पर इस विजय के कारण ही इस युग में रीतिकाव्य लिखा गया ।”^४

इन परिस्थितियों में हिन्दी की उस कविता की रचना हुई, जिसे रीति कविता अथवा शृंगार कविता कहते हैं । शृंगार रस की रोचकता उक्त परिस्थितियों में कदाचित् समाज की रुचि के विशेष अनुकूल थी । इस रुच्यनुकूलता का कारण

१. पृ० सं० ११, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सम्पादक डा० नगेन्द्र, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण ।

२. पृ० सं० २६, वही ।

३. पृ० सं० २८, वही ।

४. पृ० सं० ३०, वही ।

हिन्दी के अधिकांश लेखकों के मतानुसार उस समय के धनाढ्यों तथा राजाओं का विषयानुरक्त तथा लम्पट होना था। परन्तु जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इस विषय पर सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया है। उन्होंने इसका मनो-वैज्ञानिक कारण बताते हुए लिखा है कि, "× × × जो मनुष्य सदा उत्तमोत्तम भोज्य-पदार्थों का भोग करता है, उसके निमित्त^१ भोजन सामग्री का वर्णन विशेष रोचक नहीं होता। पर जो मनुष्य भूखा अथवा स्वादिष्ट पदार्थों को तरसा हुआ होता है, वह उत्तम भोज्य-सामग्री का वर्णन बड़े चाव से सुनता है, और कभी ऐसे वर्णन से उसके मुँह से लार टपकने लगती है।"

इसके आगे तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए, रत्नाकरजी निर्धारित करते हैं कि उन दिनों देश में युद्ध का वातावरण था--गज्याश्रित तथा यवन-साम्राज्य के विरुद्ध दोनों ही प्रकार के राजे-महाराजों को युद्ध के लिए सन्नद्ध रहना पड़ता था। "ऐसी दशा में दोनों ही प्रकार के लोगों को सुख-चैन की प्राप्ति असम्भव थी। मनुष्य के विषयानुरक्त होने के निमित्त उसका चिन्तारहित तथा सुख-चैन के अवसरों एवं सामग्रियों से सम्पन्न होना आवश्यक है। अतः उस समय के राजा तथा सामंत विषयासक्त नहीं कहे जा सकते। प्रत्युत उनके विषय में तो यही अनुमान करना समीचीन प्रतीत होता है कि वे शारीरिक तथा मानसिक सुख से विशेषतः वंचित ही रहते थे, और यही कारण था कि उनको शृंगार रस की कविता विशेष रोचक होती थी।

बिहारी का आविर्भाव काल यही था।

: २ :

जीवन-वृत्त

अन्य महाकवियों की भाँति बिहारी ने भी अपने विषय में बहुत कम लिखा है। अतः उनके जन्म-समय, जन्म-स्थान, कुल, गोत्रादि के सम्बन्ध में संदेह बना ही रहता है।

बिहारी ने अपने विषय में केवल एक दोहा लिखा है—

प्रकट भये द्विजराज-कुल सुबस बसे ब्रज आइ ।

मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसवराइ ॥

(बिहारी सतसई १)

बिहारी के सर्वप्रथम टीकाकार श्री कृष्णलाल कवि^१ ने इस दोहे की व्याख्या में लिखा है—

“कैसो जो मेरो पिता, और केसोराम जो श्रीकृष्णजू ।”

इससे बिहारी के पिता का नाम ‘केशव’ होता विदित होता है। अनवर-चन्द्रिका, रस-चन्द्रिका, लाल-चन्द्रिका तथा हरिप्रकाश की टीका में भी उक्त निर्देश स्वीकार किया गया है। इस निर्देश से हिन्दी-साहित्य-जगत् बिहारीलाल में एक महत्वपूर्ण विवाद उठ खड़ा हुआ कि, “क्या प्रसिद्ध आचार्य केशवदास बिहारीलाल के पिता थे ?” इस पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

बिहारी-सतसई की समाप्ति के विषय में एक दोहा मिलता है—

संवत् ग्रह ससि जलधि छिति, छठि तिथि बासर चन्द ।

चैत मास पख कृष्ण में, पूरन आनन्द कंद ॥

इस दोहे के अनुसार संवत् १७१६ में बिहारी सतसई समाप्त हुई थी। रत्नाकरजी ने इस दोहे को कृष्णलाल की गद्य-टीका का समय माना है।

बिहारी के विषय में एक अन्य तीसरा दोहा भी प्रसिद्ध है—

जनम ग्वालियर जानिये, खण्ड ४ देले बाल ।

तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल ॥

१. इनका बिहारी का पुत्र होना भी अनुमान किया जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास) तथा मिश्रबन्धु (हिन्दी नवरत्न) दोनों के अनुसार बिहारी का जन्म-स्थान ग्वालियर के समीप बसुआ गोविन्दपुर गाँव था, इनका जन्म-संवत् १६६० के आस-पास हुआ, इनकी तरुणावस्था अपनी समुराल मथुरा में व्यतीत हुई और अनुमानतः यह संवत् १७२० तक विद्यमान रहे।

बसुआ गोविन्दपुर जयपुर के पास है। अतः इनका जन्म-स्थान ग्वालियर मानना ही ठीक मालूम पड़ता है।

मिश्रबन्धु ने एक और विचित्र निष्कर्ष प्रस्तुत किया है, “जान पड़ता है कि इनके पिता दरिद्र थे और इनकी बाल्यावस्था में ही मर गये, सो इन्हें बुन्देलखण्ड में (जहाँ इनकी ननिहाल होना सम्भव है) अपना लड़कपन और समुराल (मथुरा) में उमर बितानी पड़ी।”

मिश्रबन्धु ने यह भी लिखा है कि, “बिहारी भाट ब्राह्मण नहीं थे। कोई भाट अपने विषय में यह नहीं कह सकता कि वह ‘द्विज’ है। भाट प्रायः ब्रह्मभट्ट कहते हैं। कृष्ण कवि सम्बन्धी जनश्रुति इसके प्रतिकूल है। अतः निश्चय है कि बिहारीलाल माथुर चौबे थे।”

बिहारी और प्रसिद्ध कवि केशव के पुत्र-पिता के प्रश्न को लेकर काफी विवाद हो चुका है। सर्वप्रथम राधाकृष्णदास ने इनके पिता-पुत्र सम्बन्ध की बात उठाई थी। परन्तु पुष्ट-प्रमाण के अभाव में उन्होंने इसे केवल अनुमान मात्र कह कर ही संतोष किया।^१

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि कुलपति मिश्र को परम्परानुसार बिहारी का भानजा माना जाता है और कुलपति ने अपने ग्रन्थ ‘संग्राम-सार’ में कविवर केशवदास को अपना मातामह बताते हुए, उनकी वन्दना की है। डा० गणपति चंद्र गुप्त ने उक्त तथ्य को स्वीकार किया है,^२ और केशवदास को बिहारी का पिता माना है।^३

बिहारी के शब्द-भंडार के आधार पर कतिपय विद्वानों ने उपर्युक्त मत के समर्थन का प्रयत्न किया है।

१. पृ० सं० १२०, कविवर बिहारीलाल, ।

२. पृ० सं० ४०१, हिन्दी काव्य में शृङ्गार-परम्परा और महाकवि बिहारी।

३. पृ० सं० ४१०, वही।

उक्त मत का विरोध सर्वप्रथम मिश्रवन्धुओं ने किया। बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने भी बिहारी को कवि केशवदास का वंशज नहीं माना है। बिहारी की वाग्विभूति के लेखक श्री विश्वनाथप्रसाद ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बिहारी के पिता केशव, केशव-राय थे, जो प्रसिद्ध कवि केशवदास से भिन्न थे, अस्तु—

विभिन्न साहित्यज्ञों तथा आलोचकों द्वारा किये गये विवेचन के आधार पर निम्नलिखित तथ्य हमारे सामने आते हैं^१—

- (१) बिहारी का जीवनवृत्त प्रायः बहिर्साक्ष्य (परम्परा, जनश्रुति एवं अनुमान) पर आधारित है। अन्तर्साक्ष्य (बिहारी सतसई) में केवल एक तथ्य का प्रत्यक्ष उल्लेख मिलता है कि बिहारी के आश्रयदाता महाराज जयसिंह थे और इन्हींकी आज्ञा से बिहारी ने सतसई की रचना की थी।
- (२) बिहारी का जन्म-संवत् १६५२ में हुआ था।^२
- (३) बिहारी का जन्म ग्वालियर में हुआ था।
- (४) बिहारी के पिता का नाम केशवदास या केशवदेव था, जो स्वयं अच्छे कवि थे। इनके पितामह का नाम वसुदेव था। बिहारी के पिता का निवास-स्थान कुछ विद्वानों ने मैनपुरी माना है, परन्तु ग्वालियर के आस-पास किसी ग्राम में उनका निवास-स्थान अधिक समीचीन है।
- (५) बिहारी धौम्यगोत्री सोती (श्रोत्रिय) घरवारी माथुर चौबे थे।
- (६) बिहारी के एक भाई और एक बहिन थी। रत्नाकरजी के अनुमान से भाई उनसे बड़े और बहिन छोटी थी।
- (७) जब बिहारी लगभग ७-८ वर्ष के थे, तब इनके पिता ओरछा चले गये

१. स्व० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने बिहारी की जीवनी से सम्बद्ध उपलब्ध प्रायः समस्त सामग्री की विश्लेषणात्मक समीक्षा की है। पाठक देखें प्रकरण ७, कविवर बिहारी। (रत्नाकर)

२. इसके समर्थन में प्रो० विश्वनाथप्रसाद ने बिहारी की 'वाग्विभूति' में यह दोहा उद्धृत किया है—

संवत् जुग सर रस रहित, भूमि रीति जिन्ह लीन्ह।

कातिक सुदि बुध अष्टमी, जन्म हमहिं विधि दीन्ह॥

(नागरी प्रचारिणी पत्रिका, जनवरी १९१६)

थे और संवत् १६६४ के आस-पास ओरछा का राग-रंग फीका पड़ जाने पर इनके पिता वृन्दावन जाकर रहने लगे थे । इस प्रकार बिहारी की शिक्षा-दीक्षा ओरछा (बुन्देलखण्ड) तथा वृन्दावन (ब्रज) में हुई । रत्नाकरजी के मतानुसार, “बिहारी ने लड़कपन में प्रसिद्ध कवि केशवदासजी से अवश्य कुछ पढ़ा था, और प्रवीणराय पातुरी का नाच भी देखा था ।”

- (८) इनके पिता निधिवन की गद्दी के महन्त श्री सरसदेव के शिष्य नरहरिदास के शिष्य थे । नरहरिदासजी उस समय ओरछा के ममीप गुढ़ी ग्राम में रहते थे । रत्नाकरजी के मतानुसार बिहारी ने निम्नलिखित दोहे में नरहरि शब्द श्री नरहरिदास के लिए श्लेष से प्रयुक्त किया है—

जम-करि मुंह-तरहरि पर्यौ, इहिं घर हरि चितु लाउ ।

विषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुण गाउ ।

(बिहारी सतसई, २१)

- (९) बिहारी का विवाह मथुरा में माथुरा ब्राह्मणों के किसी घराने में हुआ था । विवाह के पश्चात् यह अपनी ससुराल में रहने लगे थे । घरहि जँवाई लौं घट्यौ खरी पूस दिन मानु” वाला दोहा^१ इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि ससुराल में निवास करना बिहारी को रुचिकर नहीं था ।
- (१०) संवत् १६७५ के आस-पास बादशाह शाहजहाँ श्री नरहरिदास की आज्ञा से इनको वृन्दावन से आगरा लिवा लाया था ।^२ आगरा पहुँच कर बिहारी ने अरबी, फारसी, उर्दू इत्यादि का अध्ययन किया ।
- (११) संवत् १६७७ में शाहजहाँ के यहाँ पुत्र जन्मोत्सव में भारत के अनेक राजा आये थे । उन्होंने बिहारी की कविता से प्रसन्न होकर इनकी वार्षिक वृत्ति बाँध दी थी ।

१. आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु ।

घरहँ जँवाइ लौं घट्यौ, खरी पूस-दिन-मानु ।

(बिहारी सतसई, १७१)

२. श्री नरहरि नरनाह कौं, दीनी बाँह गहाइ ।

सुगुन आगरें आगरें, रहत आह सुखु पाइ ।

(नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ८, अंक १)

- (१२) संवत् १६६१-६२ के लगभग बिहारी जब अपनी वृत्ति लेने के लिये आमेर गये हुए थे, तभी तत्कालीन नरेश महाराजा जयसिंह के प्रबोध के लिए इन्होंने यह प्रसिद्ध दोहा लिखा था—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल ।

अली ! कली ही सौं बँध्यौ, आगें कौन हवाल ॥

(बिहारी-सतसई, ३८)

इसके बाद बिहारी आमेर राजघराने में ही रहे और वहाँ रहकर राजा जयसिंह के निर्देश पर सतसई की रचना की । कहते हैं कि बिहारी द्वारा राजा को प्रबुद्ध करने की बात सुनकर चौहानी रानी भी बहुत आनंदित हुई थीं और उन्होंने बिहारी को 'काली पहाड़ी' नामक ग्राम दिया था ।

- (१३) बिहारी के कोई सन्तान थी या नहीं—इस सम्बन्ध में मतभेद है ।

- (१४) संवत् १७२० के आस-पास बिहारी परलोकवासी हुए ।

- (१५) बिहारी द्वारा राजा जयसिंह को चेतावनी देने वाली घटना से सम्बन्धित बिहारी का एक चित्र चौहानी रानी ने बनवाया था । वह जयपुर के एक महल में है ।

व्यक्तित्व—बिहारी-सतसई में अनेक ऐसे दंष्टे हैं, जिनमें हमको बिहारी के स्वभाव एवं व्यक्तित्व के विषय में सहज परिचय प्राप्त हो जाता है । यथा—

- (१) बिहारी बड़े ही रसिक और मस्त प्रकृति के जीव थे ।
- (२) उनका जीवन एक सम्पन्न नागरिक का जीवन था । उनका स्वभाव नागरिकों जैसा विनोदी एवं व्यंग्यप्रिय था ।
- (३) इन्हें शहरी जीवन के व्यवहार के अनेक कटु अनुभव हुए थे और लोगों की हृदयहीनता से इनको अनेक बार व्यथा हुई थी ।
- (४) इन्हें ग्राम्य-जीवन की सच्चाई और सादगी तो पसन्द थी, किन्तु वहाँ गुण-ग्राहकता की कमी इन्हें अखरती थी । इसी आधार पर प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने (बिहारी की वाग्विभूति) यह लिख दिया है कि, “वे बराबर ‘नागरता के नाम’ पर रोते ही रहे ।”
- (५) “उनके व्यक्तित्व में तीनों गुणों (प्रतिभा, अध्ययन और अभ्यास) का समन्वय मिलता है ।” (डा० गणपतिचन्द्र गुप्त)
- (६) इन्हें चाटुकारिता से प्रेम नहीं था ।

- (७) बिहारी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किया है, “बिहारी जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रतिवादिता से बचकर चलने वाले व्यक्ति थे। वे दो विरोधी प्रवृत्तियों के बीच भी सामंजस्य प्रस्तुत करते हुए अपने लिए मार्ग बना सकते थे।”^१
- (८) “अनुमान होता है कि यद्यपि बिहारी में काव्य-प्रतिभा तथा स्वाभाविक कवि के अन्यान्य गुण तो पूर्णतया विद्यमान थे, जैसा कि उनके दोहों से लक्षित होता है, तथापि उनकी रुचि कविता बनाने की अपेक्षा सुन्दर-सुन्दर काव्यों के आस्वादन और विद्योपार्जन पर अधिक थी।

: ३ :

बिहारी-सतसई की टीकाएँ

जयपुर के राजा जयसिंह की आज्ञानुसार बिहारी ने दोहे लिखना आरम्भ किये। इस प्रकार सात सौ से कुछ अधिक-दोहे बने जो संगृहीत होकर 'बिहारी-सतसई' के नाम से प्रसिद्ध हुए। बिहारी ने इस सतसई के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। यही एक ग्रन्थ बिहारी की इतनी प्रसिद्धि एवं कीर्ति का आधार है। सतसई के दोहों के विषय में आचार्य शुक्ल ने अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "शृङ्गार रस के ग्रन्थों में जितनी म्याति और जितना मान बिहारी सतसई का हुआ उतना और किसीका नहीं। इसका एक-एक दोहा हिन्दी-साहित्य में एक-एक-रत्न माना जाता है। इसकी पचासों टीकाएँ रची गई।" × × × यह बात साहित्य-क्षेत्र के इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा कर रही है कि किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिमाण के हिसाब से नहीं होता, गुण के हिसाब से होता है।"

प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी लिखा है कि, "सतसैया के निर्माण के बाद से ही उसकी टीकाएँ होने लगीं और तीन सौ वर्षों से बराबर टीकाएँ लिखी जा रही हैं। × × × सतसैया की टीका लिखना भी काव्य-मर्मज्ञता की कसौटी थी।"

पिछले तीन सौ वर्षों से बिहारी-सतसई के ऊपर बराबर टीकाएँ लिखी जा रही हैं। कुछ प्राचीन टीकाएँ मिलती हैं, तथा कितनी ही प्राप्य हैं। प्रत्येक युग में अच्छे से अच्छा साहित्यिक उसकी टीका लिखता पाया जाता है।

बिहारी-सतसई की टीकाएँ गद्य और पद्य दोनों ही में लिखी गई हैं। टीकाएँ हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और फारसी में भी लिखी गईं। टीकाओं के रचयिता उत्तर प्रदेश के निवासी ही नहीं, अन्य प्रदेशों में रहने वाले महानुभाव भी हैं।

इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध टीकाएँ हैं—(१) कृष्ण कवि की टीका, (२) हरिप्रकाश की टीका, (३) लल्लूलाल की लालचन्द्रिका, (४) सरदार कवि की

टीका, (५) सूरति मिश्र की टीका, (६) जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की टीका—बिहारी-रत्नाकर, (७) पं० पद्मसिंहशर्मा की 'बिहारी की सतसई' तथा (८) लाला भगवानदीन की 'बिहारी-बोधिनी' ।

इनके अतिरिक्त बिहारी के दोहों के भाव पल्लवित करनेवाले छप्पय, कुण्डलिया, सबैया आदि कई कवियों ने लिखे । यथा—

(क) कुण्डलिया—पठान सुलतान और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र । इन्होंने केवल कुछ ही दोहों को पल्लवित किया है ।

(ख) रोला—पं० अम्बिकादत्त व्यास । इन्होंने सब दोहों के भाव पल्लवित किये हैं ।

(ग) संस्कृत अनुवाद—पं० परमानन्द की शृंगार सप्तशती ।

(घ) उर्दू शेरों में अनुवाद—बुन्देलखण्ड के मुन्शी देवीप्रसाद (प्रीतम) ।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार बिहारी-सम्बन्धी एक अलग साहित्य ही खड़ा हो गया है । इसका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है—

(क) सतसैया की टीकाएँ—रत्नाकरजी ने 'बिहारी-सतसई' के ऊपर कालक्रमानुसार लिखी गई निम्नलिखित ५४ टीकाओं का उल्लेख किया है—

(१) कृष्णलाल की टीका—यह सतसई की सर्वप्रथम गद्य-टीका है । अन्तर्दार्ष्टिक्य के अनुसार इसकी रचना संवत् १७६६ में हुई थी । इसकी भाषा जयपुरी मिश्रित ब्रजभाषा है । रत्नाकरजी ने इसके रचयिता को बिहारीलाल के पुत्र होने की सम्भावना स्वीकार की है । इसकी प्रतिलिपि संवत् १८२० की लिखी मिलती है ।

(२) विजयगढ़ के कवि पद्मसिंह की टीका—इसका निर्माण-काल संवत् १७६७ के लगभग अनुमान किया जाता है । इसके टीकाकार उदयपुर-नरेश महाराणा राजसिंह को दरबारी कवि मान हैं । इसकी एक प्रतिलिपि संवत् १७७२ की लिखी हुई मिलती है, जिसके लिखनेवाले का नाम प्रतापविजय है ।

(३) चारणदास की टीका—इसका उल्लेख 'मिश्रबन्धु विनोद' में किया गया है । इसका रचना-काल अनुमानतः संवत् १७४६ है ।

(४) पठान सुलतान की टीका—यह टीका कुंडलियों में है । इसकी केवल पाँच कुंडलियाँ ही प्राप्त हो सकी हैं । यह ग्रन्थ पूरा हो गया था, अथवा अधूरा रह गया था । इस बारे में मतभेद है । इसका रचना-काल (शिवसिंह सरोज के अनुसार) संवत् १७६१ है ।

- (५) अनवरचन्द्रिका टीका—इसका रचना-काल संवत् १७७१ है । इसकी रचना शुभकरणा तथा कमलनयन कवियों ने नब्बाव अनवरखाँ की आज्ञा से की थी ।
- (६) राजा गोपालशरण की टीका—इसका रचना-काल संवत् १७७० तथा १७८० के बीच में माना गया है ।
- (७) कृष्ण कवि की कवित्तबंध टीका—इसका रचना-काल संवत् १७८२ माना गया है ।
- (८) कर्ण कवि की 'साहित्यचन्द्रिका' टीका—इसका रचना-काल संवत् १७९४ माना जाता है । इसके रचयिता पन्नावाले कर्ण कवि है ।
- (९) सूरत मिश्र की अमरचन्द्रिका टीका—इसका रचना-काल सं० १७९४ है ।
- (१०) रघुनाथ बंदीजन की टीका—इसका रचना-काल संवत् १८०२ के आस-पास है ।
- (११) ईसवीखाँ की रचन्द्रिका टीका—रचना-काल संवत् १८०९ है । नरवरगढ़ के राजा छत्रसिंह के अनुरोध पर इस टीका की रचना हुई थी ।
- (१२) हरिप्रकाश टीका—हरिचरणदास उपनाम हरिकवि ने संवत् १८३४ में इसको लिखा था ।
- (१३) लालकवि वन्दीजन की लालचन्द्रिका टीका—लालकवि वन्दीजन काशी-निवासी थे और इनकी टीका का उल्लेख 'शिवसिंह सरोज' में है । इसका रचना-काल संवत् १८४० के आस-पास माना जाता है ।
- (१४) प्रतापचन्द्रिका टीका—लेखक का नाम मनीराम है तथा रचना-काल संवत् १८५० के आस-पास माना जाता है ।
- (१५) अमरसिंह कायस्थ की अमरचन्द्रिका टीका—इसके रचयिता अमरसिंह कायस्थ राजनगर फतहपुरवाले कहे जाते हैं । रचना-काल संवत् १८४५ के आस-पास माना जाता है ।
- (१६) बिहारी-सतसईया पर पद्य टीका—इसके रचयिता का नाम राधाकृष्ण चौबे (चित्रकूट) है । 'मिश्रवन्धु विनोद' के अनुसार इसका रचना-काल संवत् १८५० के पूर्व है ।
- (१७) देवकीनंदन की टीका—इसका नाम 'सतसैया-वर्णार्थ' है । इसकी रचना संवत् १८६१ में ठाकुर कवि ने बाबू देवकीनंदन के प्रसन्नार्थ की थी ।

- (१८) रणछोड़ राय दीवान की टीका—इसका रचना-काल संवत् १८६० और १८७० के बीच का है।
- (१९) महाराज मानसिंह जोधपुर वाले की टीका—इसका रचना-काल अनुमान से संवत् १८७० के आस-पास माना गया है। 'मिश्रबन्धु विनोद' में इसका उल्लेख है।
- (२०) लल्लूलाल की लालचन्द्रिका टीका—इसके रचयिता आगरा-निवासी गुजराती ब्राह्मण लल्लूलालजी औदीच्य हैं। इसका रचना-काल संवत् १८७० के आस-पास है।
- २१) रामजू की टीका—इसका रचना-काल संवत् १९०१ है। रत्नाकरजी ने इसके अस्तित्व को संदिग्ध माना है।
- (२२) नव्वाब जुल्फिकार अली की टीका—यह टीका कुडलियों में है। इसका रचना-काल संवत् १९०३ ठहरता है। रत्नाकरजी के मतानुसार इसकी कुडलियों की रचना मध्यम श्रेणी की है। उससे अर्थज्ञान में विशेष माहायता प्राप्त नहीं होती है।
- (२३) ईश्वरीप्रसाद कायस्थ कृत कुडलिया—'मिश्रबन्धु विनोद' में इसका उल्लेख है। इसका रचना-काल संवत् १९१० माना गया है।
- (२४) सरदार कवि की टीका—इसका रचना-काल संवत् १९१० तथा संवत् १९३० के बीच का है। रत्नाकरजी के मतानुसार, "वह टीका बहुत अच्छी है।"
- (२५) गदाधरजी की टीका—यह टीका पद्माकर कवि के किसी गदाधर नामक वंशज की रची हुई है। रचना-काल अनुमानतः संवत् १९२५ है।
- (२६-२७) धनंजय तथा गिरिधर की टीकाएं—नाम के अतिरिक्त इन टीकाओंके विषय में और कुछ भी ज्ञात नहीं है।
- (२८) रसिक बिहारी अथवा रसिकेश की टीका—यह टीका सर्वैया और घनाक्षरी छंदों में है। इसमें बिहारी के ३१ दोहों का सर्वैया तथा घनाक्षरी छंदों में विस्तार किया गया है। इसका रचना-काल संवत् १९२७ है।
- (२९) अयोध्याप्रसाद की टीका—इसका आनुमानिक रचना-काल संवत् १९२७ है।

- (३०-३१) रामबक्सकृत तथा गंगाधरकृत टीकाएँ—इन टीकाओं के विषय में केवल 'शिवसिंह सरोज' में उल्लेख है—अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं है।
- (३२) प्रभुदयाल पांडे की टीका—इसमें अनेक दोहों का पाठ गड़बड़ है। इसमें १४ पृष्ठ की एक भूमिका है। यह संवत् १९५३ में प्रकाशित हुई थी।
- (३३) छोटारामकृत वैद्यक टीका—बिहारी-बिहार की भूमिका में इसका उल्लेख है। इसका विवरण कहीं कुछ कहीं कुछ मिलता है। 'मिश्रबन्धु विनोद' के अनुसार छोटाराम बौकीपुर के रहने वाले एक गद्य लेखक थे।
- (३४) पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की टीका—इसका नाम 'बिहारी बिहार' है। यह टीका कुंडलियों में है—अर्थात् इसमें दोहों का विस्तार कुंडलियों में किया गया है।
- (३५) विद्यावारिधि ज्वालाप्रसाद मिश्र की टीका—इसका नाम भावार्थ प्रकाशिका टीका है। यह टीका संवत् १९५४ में समाप्त हुई। यह संवत् १९६० में बैकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हुई।
- (३६) साहेबजादे बाबा सुमेरसिंह की टीका—इसमें बिहारी के दोहों को कुंडलियों में किया गया है। इसका नाम 'बिहारी-सुमेर' है। इसका निर्माण-काल संवत् १९५५ और संवत् १९६० के बीच में है।
- (३७) मुंशी देवीप्रसाद कायस्थ उपनाम 'प्रीतम' की टीका—इस टीका में उर्दू शेरों में बिहारी के दोहों का अनुवाद है। इसका रचना-काल अनुमानतः संवत् १९६० है।
- (३८) भानुप्रताप तिवारी की टीका—इस टीका का उल्लेख 'मिश्रबन्धु विनोद' में किया गया है। इसका रचना-काल संवत् १९६० के आस-पास है।
- (३९) पंडित पद्मसिंह शर्मा की टीका—यह टीका 'संजीवन-काव्य' नाम से प्रसिद्ध है। यह टीका संवत् १९७५ में ज्ञानमंडल प्रेस काशी से प्रकाशित हुई थी। इसमें केवल १२६ दोहों की सुन्दर टीका है। इस टीका पर संवत् १९७९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा मंगलाप्रसाद पारितोषक (१२०० रु०) प्रदान किया गया था।
- (४०) गुलजारे बिहारी—इसकी चर्चा 'गुलदस्त-ए-बिहारी' की भूमिका में मिलती है। इसके लेखक का नाम विदित नहीं है। इसमें उर्दू की शेरों

मे बिहारी के दोहों का अनुवाद है। रचना-काल अनुमानतः संवत् १६७५ तथा संवत् १६८० के बीच है।

- (४१) लाला भगवानदीन की टीका—लाला भगवानदीन द्वारा की गई इस टीका का नाम बिहारी-बोधिनी है। इसका रचना-काल संवत् १६७८ है। यह टीका खड़ीबोली में है। यह विद्यार्थियों के सहायतार्थ लिखी गई है। दोहों के भावार्थ के अतिरिक्त अलंकार को विशेष बातें भी इसमें लिखी गई हैं।
- (४२) कुलपति मिश्र इन टीकाओं की केवल चर्चा ही मिलती है।
- (४३) उमेदराम तथा टीकाएँ देखने में नहीं आई हैं।
- (४४) सूर्यमल की टीकाएँ
- (४५) धनीराम की टीका—यह टीका रीवा में किसी के पास है।
- (४६) संस्कृत गद्य टीका—इसमें प्रत्येक दोहे के अलंकार, नायिका, उक्ति आदि कहे गये हैं। टीका बहुत ही कम है। भाषा बहुत सरल है। इसकी रचना संवत् १८४४ के आस-पास हुई। इसके रचयिता का नाम बाबू गंगाविष्णु बताया जाता है, परन्तु पं० अम्बिकादत्त व्यास के मतानुसार इसके लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। इसकी अशुद्ध भाषा को देखते हुए बाबू गंगाविष्णु इसके लेखक नहीं हो सकते। सम्भवतः लल्लूलालजी ने बिहारी की टीका करते समय इस ग्रन्थ से सहायता ली होगी।
- (४७) पंडित हरिप्रसादजी की संस्कृत टीका—आप काशीराज श्रीचेतसिंह महाराज के प्रधान कवि थे। इसका रचना-काल संवत् १८३७ है। इसमें सतसई के दोहों का अर्थ छन्दों में संस्कृतानुवाद है। इसका नाम 'आर्यागुंफ' टीका है। पंडित अम्बिकादत्त व्यास के 'बिहारीबिहार' की भूमिका में इसका उल्लेख है।
- (४८) एक अन्य संस्कृत गद्य टीका—रत्नाकरजी ने इसकी भाषा की बहुत प्रशंसा की है। इसके रचयिता तथा रचना-काल इत्यादि का कुछ भी पता नहीं है। इसमें प्रति दोहे का एक छोटा सा अवतरण लिखकर उसके वक्ता, बोधक तथा नायिका-भेद बतलाये गये हैं। रत्नाकरजी के मतानुसार "वास्तव में यह टीका देवकीनन्दन-टीका का एक प्रकार का अनुवाद मात्र है।"

- (४६) **पंडित परमानन्द भट्ट की संस्कृत टीका**—इसका निर्माण-काल संवत् १६२५ । भट्टजी ने इसको बनाकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा उनके मित्र रघुनाथ पंडित को समर्पित किया था । इसमें बिहारी के दोहों का दोहों ही में संस्कृतानुवाद है । इस ग्रन्थ का नाम 'शृंगार सप्तशती टीका' है ।
- (५०) **भावार्थ-प्रकाशिका गुजराती टीका**—इसको संवत् १६६६ में गुजराती भाषा के लेखक और कवि श्रीसवितानारायण गणपतनारायण ने रचा है । इसमें अर्थ, वक्ता, बोधक तथा अलंकार बहुत अच्छी तरह से बताये हैं ।
- (५१-५२) **ब्रजभाषा की टीकाएँ**—इनमें एक टीका पुराने ढंग की ब्रजभाषा में है और दूसरी नए ढंग की प्रचलित ब्रजभाषा में है । पुराने ढंग की ब्रजभाषा वाली टीका के रचयिता ईश्वर कवि हैं— जो जाति के मनाढ्य ब्राह्मण थे और धवलपुर के रहनेवाले थे । रचना-काल संवत् १६६१ है तथा यह सबैया छन्दों में लिखी हुई है । नए ढंग की ब्रजभाषावाली टीका के लिखने वाले हैं श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी । इसका प्रथम संस्करण रामनवमी संवत् १६८२ को प्रकाशित हुआ । इसमें दोहों के अर्थ सुगम प्रचलित भाषा में हैं । यह विद्यार्थियों के लिए बहुत अच्छी है ।
- (५३) **फारसी की टीका**—इसके रचयिता का नाम श्री जोशीआनन्दीलाल शर्मा है । इसका निर्माण-काल हिजरी सन् १३१४ बताया गया है,— जो सन् १८६३ होता है । इसका नाम 'सफरगे सतसई' है, और यह अलवर महाराज जयसिंह सवाई के समय में बनाई गई थी । इसमें फारसी में दोहों का अनुवाद किया गया है, जो विशेष सफल नहीं हो पाया है ।
- (५४) **'बिहारी रत्नाकर' टीका**—इसके रचयिता बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर हैं । इसमें प्राचीन उक्तियों के सहारे दोहों के पाठ शुद्ध करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है । दोहों के पूर्वापर क्रम तथा संख्या को प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर रखा गया है । दोहों के भावार्थ प्रायः शुद्ध और साहित्यिक भाषा में हैं । इसका रचना-काल स्वयं 'रत्नाकरजी' के शब्दों में इस प्रकार है, "इस ग्रन्थ का टीका-भाग

संवत् १९७८ के माघ मास से, श्री अयोध्यापुरी में, आरम्भ होकर संवत् १९७९ के भाद्रपद की ऋषि-पंचमी को, हमारी ५६वीं वर्षगांठ के दिन कश्मीर प्रांत के निशातबाग नामक स्थान में समाप्त हुआ ।”

(प्राक्कथन, बिहारी रत्नाकर)

हमारे विचार से दोहों के सर्वाधिक पाठ और अर्थ इसी टीका के हैं ।

- (५५) पं० अमृतलाल चतुर्वेदी की टीका—इधर हमारे देखने में पं० अमृतलाल चतुर्वेदी की लिखी हुई टीका की हस्तलिखित प्रति देखने में आई है । इसमें बिहारी के कई दोहों के बड़े ही चमत्कारपूर्ण अर्थ किये गए हैं । कारण यह है कि चतुर्वेदीजी बिहारी द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा की आत्मा से पूर्णतया एकाकार हैं । यह टीका लेखक की भूमिका के आधार पर इस प्रकार है—संवत् १९८२ में श्रीपद्मसिंह शर्मा से लेखक का परिचय हुआ—उन्होंने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि वह बिहारी की टीका लिखें । × × × मन् १९४६ में पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने पुनः उनसे टीका लिखने को कहा—कहा ही नहीं—‘बिहारी रत्नाकर’ की एक प्रति भी भेंट की । × × × और इस प्रकार २१-६-१९४८ को वह टीका पूरी हुई ।

उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है—

- (१) कुल उपलब्ध टीकाओं की संख्या ५५ है । इनमें ४७ टीकाएँ हिन्दी में, ४ संस्कृत में, २ ब्रजभाषा में, १ गुजराती में तथा १ फारसी में हैं ।
- (२) १० टीकाएँ विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में, ११, उन्नीसवीं शताब्दी में तथा शेष बीसवीं शताब्दी में लिखी गई । आधुनिक काल की तीन टीकाएँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं—(i) पं० पद्मसिंह शर्मा-कृत (ii) दीनजी कृत तथा (iii) रत्नाकरकृत ।
- (३) इनमें कई टीकाएँ अप्राप्य हैं । इनका केवल उल्लेख मात्र मिलता है । इनका उल्लेख प्रायः मिश्रबन्धुओं ने अपने ‘मिश्रबन्धु विनोद’ में किया है ।
- (४) बहुत कम टीकाएँ ऐसी हैं, जिनमें सतसई के समस्त दोहों की टीका की गई हो ।
- (५) दोहों के पूर्वापरक्रम तथा पाठ में पर्याप्त भेद एवं अन्तर है ।
- (६) वैज्ञानिक अध्ययन की प्रणाली प्रचलित हो जाने तथा समस्त पुरानी

सामग्री उपलब्ध हो जाने के फलस्वरूप आधुनिक काल में बिहारी की सतसई का अध्ययन व्यवस्थित ढंग से हुआ है। 'रत्नाकर जी' ने 'बिहारी रत्नाकर' के प्राक्कथन में अध्ययन के आधार रूप पाँच टीकाओं^१ का उल्लेख करने के पश्चात् लिखा है कि, "× × × यथार्थ अर्थों का बोध उनमें से किसी टीका से भी नहीं हो सकता। × × × एक ही पुस्तक में कोई शब्द अथवा कारक एक दोहे में एक प्रकार से और दूसरे में दूसरे प्रकार से लिखा दिखाई दिया।"

'रत्नाकर' कृत टीका 'बिहारी-रत्नाकर' के विषय में आचार्य शुक्ल ने ग्रन्थ का महत्त्व स्वीकार करते हुए लिखा है, "बिहारी का सबसे प्रामाणिक और उत्तम संस्करण बड़ी मामिक टीका के साथ थोड़े दिन हुए प्रसिद्ध साहित्य-मर्मज्ञ और ब्रजभाषा के प्रधान आधुनिक कवि बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने निकाला। जितने शुद्ध और जितनी सावधानी से यह सम्पादित हुआ है, आज तक हिन्दी का और कोई ग्रन्थ नहीं हुआ है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास)।

- (७) बिहारी की टीकाएँ विविध भाषाओं—हिन्दी, संस्कृत, गुजराती और फारसी—में हैं, तथा विविध प्रकार से हैं—(i) हिन्दी गद्य में, (ii) संस्कृत गद्य में तथा (iii) पद्य द्वारा अनुवाद एवं भाव-पल्लवन। पद्य द्वारा भाव-पल्लवन दोहा, सवैया, कवित्त और कुण्डलियों में मिलता है। पद्य-मय भाव-पल्लवन का कार्य कुण्डलियों में सर्वाधिक हुआ है। पठान सुलतान (संवत् १७६१), नब्बाब जुल्फिकार अली (संवत् १८०३), ईश्वरीप्रसाद कायस्थ और पं० अम्बिकादत्त व्यास ने कुण्डलियां लिखी हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा श्रीपण्डया जोषूराम ने भी कुछ कुण्डलियाँ लगाई थीं।

इन टीकाओं और रूपान्तरों के अतिरिक्त बिहारी और उनकी सतसई को लेकर हिन्दी में शोध-प्रबन्ध भी प्रकाशित हुए हैं। इनके अलावा विभिन्न

-
१. नवलकिशोर प्रेस की छपी हुई कृष्ण कवि की कवित्तों वाली टीका, (२) भारत जीवन प्रेस की छपी हुई हरि-प्रकाश टीका, (३) लल्लूलालजीकृत लालचन्द्रिका टीका, (४) विद्योदय-प्रेस की छपी हुई पं० परमानन्दजी कृत शृङ्गार-सप्तशती नाम की संस्कृत टीका तथा (५) सरदार कवि की टीका (हस्तलिखित)।

पत्र-पत्रिकाओं में लेखादि प्रकाशित होते रहते हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वे लेख हैं, जो आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय में देव और बिहारी के तुलनात्मक महत्त्व को लेकर लिखे गये थे। पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने अपने लेखों को एकत्र करके 'देव और बिहारी' पुस्तक प्रकाशित कराई, तो उसके जवाब में लाला भगवानदीन ने अपने लेखों का संग्रह 'बिहारी और देव' के नाम से पुस्तक छपवाई थी। देव और बिहारी में कौन बड़ा है—इस प्रश्न को लेकर हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं में बहुत दिनों तक संग्राम छिड़ा रहा था। 'दीन जी' के देहावसान के साथ इस संग्राम का भी अन्त हो गया। इनमें कुछ लेख तो बहुत ही रोचक एवं मार्मिक थे।

बिहारी के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण लेखमाला स्वर्गीय रत्नाकरजी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित की थी।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में बिहारी के सम्बन्ध में बहुत ही संक्षिप्त किन्तु प्रौढ़ एवं सारगर्भित समालोचना लिखी है।

दोहों का क्रम—बिहारी-सतसई के दोहों को विभिन्न सतसईयों में विभिन्न क्रम से रखा गया है। इसका एक ही कारण है। बिहारी ने अपनी आदर्श सतसईयों की भाँति अपनी सतसई को भी मुक्तक दोहों का एक क्रमरहित संग्रह ही रहने दिया। इस सम्बन्ध में रत्नाकरजी का मन्तव्य पठनीय है—
“उनके पश्चात्, उनकी कविता के गुण-ग्राहकों तथा टीकाकारों ने, यह समझ कर कि एक-एक प्रकार के दोहों को एकत्र कर देने से उनकी शोभा कुछ विशेष बढ़ जाएगी तथा उनके अर्थ समझने में भी कुछ सहायता प्राप्त होगी, अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उनके दोहों के क्रम लगा लिये।” (पृ० सं० १६४, कविवर बिहारी, प्रथम संस्करण) यह बात सतसई के प्रथम क्रमकर्त्ता कोविद कवि ने स्पष्टतः स्वीकार की है—

किए सात सैं दोहरा सुकवि बिहारीदास ।

बिनुहि अनुक्रम ए भए महिमण्डल सुप्रकास ॥

✕

✕

✕

तहँ कोविद सुभ ए लिखे भिन्न-भिन्न अधिकार ।

देखत ही कछु समुमियैं जिन तैं अरथ-विचार ॥

सतसई के एक अन्य क्रम-कर्त्ता ने भी यही बात कही है—

जद्यपि है सोभा सहज मुक्तनि तऊ सु देखि ।

गुहैं ठौर की ठौर तैं लर में होति बिसेषि ॥

रत्नाकरजी ने इन पाँच पुस्तकों के आधार पर अपना क्रम निश्चित किया है—

(i) जयपुर के निजी पुस्तकालय से प्राप्त दो प्रतियाँ—इनके रचना-काल क्रमशः संवत् १७०३-४ तथा संवत् १७३६ है ।

(ii) विजयगढ़वाले मानसिंह कवि की टीका महित संवत् १७७२ में लिखी हुई प्रति ।

(iii) पंडित शम्भुनाथ के हाथ की लिखी हुई संवत् १७८६ की प्रति ।

(iv) किसी लक्ष्मीरत्न नामक लेखक की लिखी संवत् १७९६ की प्रति । इसमें जहाँ-तहाँ दोहों के भाव के चित्र भी बने हैं ।

इनके अतिरिक्त रत्नाकरजी ने दो अन्य सटीक पुस्तकों की चर्चा की है । इनमें निर्धारित क्रमों के विश्लेषण एवं अध्ययन के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विजयगढ़ वाले मानसिंह की सटीक पुस्तक ही सर्वाधिक मान्य है । इसी कारण 'बिहारी-रत्नाकर' के क्रमस्थापन में इसीको आधार माना गया है । उपर्युक्त सातों पुस्तकों पर विचार करने के पश्चात् रत्नाकरजी ने जो निष्कर्ष निकाला, वह भी महत्वपूर्ण है—“ये किसी ऐसी प्रति की प्रतिलिपियाँ अथवा पारम्परिक प्रति की प्रतिलिपियाँ हैं, जिसमें बिहारी के दोहे अपने रचना-क्रम के अनुसार संगृहीत थे । इनके क्रमों में जो कहीं-कहीं कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है, उसका कारण केवल लेखकों का प्रमाद अथवा छाँटने की चेष्टा मात्र है ।

हमारी राय में 'बिहारी-रत्नाकर' का क्रम बहुत ही युक्तियुक्त एवं ठीक है । बहुत सम्भव है कि यही क्रम बिहारी का भी क्रम हो ।

: ४ :

रीति-काल

[ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विशेषताएँ]

रीति शब्द और रीति-काल का लक्षण —संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द का प्रयोग एक काव्यांगविशेष के अर्थ में होता रहा है। सर्वप्रथम वामन (१५वीं शताब्दी) ने इसका स्वरूप 'विशिष्टापद-रचना' निर्दिष्ट करते हुए इसे काव्य की आत्मा घोषित किया। भोज ने 'रीङ्ग-तौ' धातु से 'रीत' शब्द को 'पथ' अथवा 'काव्यमार्ग' का पर्याय माना।

वेदर्भोदिकृतः पन्था काव्ये मार्गइतिस्मृतः।

रीङ्गवाविति धातोः सा व्युत्पत्य रीति रुच्यते।

(सरस्वती कण्ठाभरण)

इस सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

रियन्ते परम्परा गच्छन्त्यऽनयेति करण साधनोऽयं रीति शब्दो, मार्ग पर्यायः।

कुन्तक ने भी 'पथ' को रीति का पर्याय स्वीकार किया। इस प्रकार इसका धात्वर्थ 'प्रणाली', 'परिपाटी' आदि है।

ध्वन्यालोककार का स्पष्ट मत है कि—

शब्दार्थ शासन ज्ञान मात्रैणैव न वेद्यते।

वेद्यते स हि काव्यार्थ तत्त्वज्ञैरेवकेवलम् ॥

(ध्वन्यालोक १।७)

अतएव जिनके अध्ययन से काव्य का स्वरूप एवं रहस्य तथा काव्य के रस, ध्वनि, अलंकार आदि भेदों का ज्ञान एवं गुण-दोष, विवेचन की शक्ति उत्पन्न हो, उन ग्रन्थों को 'रीतिग्रन्थ' कहते हैं।

हिन्दी में 'रीति' का प्रयोग 'काव्य-रचना-पद्धति' के अर्थ में हाँता आया है। केशव तथा अन्य कुछ आचार्यों ने इसी अर्थ में पंथ शब्द का प्रयोग किया है—

समुझने वाला बालक हूँ वर्णन पंथ अगाध (केशव)

× × ×
सुकविन हूँ की कछु कृपा, समुझि कवनि को पंथ (भूषण)

× × ×
ताही को रति कहत है, रसप्रथन की रीति (पद्माकर)

कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी में प्रचलित अर्थ काव्यरचना-पद्धति का आधार संस्कृत काव्यशास्त्र में उपलब्ध हो जाता है।

'रीति' से तात्पर्य काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगों—रस, ध्वनि, अलंकार, काव्य के गुण-दोष आदि के विवेचन में होता है। हिन्दी साहित्य में सन् १६०० से लेकर सन् १८०० तक की कालावधि में ऐसे ही रीति-ग्रन्थों की रचना हुई थी। इसी कारण इसे रीति-काल कहा जाता है। इन ग्रन्थों में काव्य-लक्षण, रस-निरूपण, भाव भेद, नायक-नायिका-भेद-कथन, ध्वनि, अलंकार, पिगल काव्य के गुण-दोष आदि समस्त काव्यांगों का विस्तृत विवेचन है।

अभिनवगुप्त (१०वीं शताब्दी) ने रस और ध्वनि सिद्धान्तों का समन्वय आरम्भ कर दिया था। आचार्य मम्मट, हेमचन्द्र और विश्वनाथ से होता हुआ पण्डितराज अमलनाथ (१७वीं शताब्दी) तक यह समन्वय पूर्ण हो गया। यही हिन्दी के रीति-काल का आरम्भ-काल है। अतएव हिन्दी रीतिग्रन्थों की परम्परा में ध्वनि और रस का यह विभेद समाप्त हो चुका था।

रीति-काल का प्रवर्तन—हिन्दी का रीति-काल एक परम्परा का आवश्यक विकास था। उसके अन्तर्गत प्राकृत संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी के भक्ति-काल के धीरे-धीरे ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में ये ग्रन्थ विकसित होते रहे।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—ईस्वी सन् के आसपास विरचित भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र में हमको सर्वप्रथम काव्यांगों का निरूपण उपलब्ध होता है। इसके पश्चात् उस विषय का उल्लेखनीय ग्रन्थ है वेदव्यासकृत 'अग्निपुराण'। इसमें समस्त काव्यांगों का विवेचन है।

पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ से संस्कृत के काव्यों में पाण्डित्य-प्रदर्शन एवं अलंकारों के प्राधान्य की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। भट्टिकाव्य इसी प्रवृत्ति

का फल है। कालिदास के पश्चात् विरचित महाकाव्यों में तो अलंकारों और चमत्कार-प्रदर्शन का प्राधान्य हो ही गया। इन कवियों के सम्बन्ध में चन्द्रशेखर शास्त्री ने 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा' में लिखा है कि, "इन उत्तरकालीन कवियों ने काव्य का उद्देश्य बाह्य शोभा, अलंकार, श्लेष-योजना एवं शब्द-विन्यास चातुरी तक ही सीमित कर दिया। अलंकार-कौशल का प्रदर्शन करना तथा व्याकरण आदि के नियमों के पालन में अपनी निपुणता सिद्ध करना उनका प्रधान लक्ष्य हो गया। काव्य का विषय गौण हो गया तथा भाषा और शैली को अलंकृत करने की कला प्रधान हो गई।" कहने की आवश्यकता नहीं है कि संस्कृत साहित्य-शास्त्र के अन्तर्गत प्रचलित विभिन्न सम्प्रदाय—अलंकार-सम्प्रदाय, रीति-सम्प्रदाय, ध्वनि-सम्प्रदाय, वक्रोक्ति-सम्प्रदाय तथा रस-सम्प्रदाय इसी प्रवृत्ति के फल थे। अलंकार को प्रधानता देकर, विधिवत् साहित्य-शास्त्र की रचना करनेवाले आचार्यों में सर्वप्रथम भामह और दण्डी के नाम आते हैं। इनका समय ५वीं या ६वीं शताब्दी है। इनमें कौन पहले हुआ, यह विवादास्पद है।

यद्यपि 'रीति' के बीज दण्डी में विद्यमान थे, तथापि 'रीति' को काव्य की आत्मा कह कर रीति-सम्प्रदाय का उद्भावन वामन ने ८वीं शताब्दी में किया।

दण्डी और वामन के बीच में ७वीं शताब्दी में वालभट्ट ने 'रीति' की चर्चा की। इस प्रकार रस और अलंकार की भाँति रीति की परम्परा रस और अलंकार के समानान्तर चली आ रही थी। वामन ने उसे एक निश्चित रूप में बाँध दिया।

इनके पश्चात् ध्वन्यालोककार एवं कुन्तक ने क्रमशः 'ध्वनि' एवं वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा कहकर 'ध्वनि-सम्प्रदाय' तथा वक्रोक्ति सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की।

ध्वनि सिद्धान्त के अनुयायियों में अभिनवगुप्ताचार्य, आचार्य मम्मट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ उल्लेखनीय हैं। इनमें सर्वाधिक सांगोपांग विवेचन मम्मट ने ११वीं शताब्दी में किया है। इन्होंने रस का विवेचन ध्वनि के अन्तर्गत किया।

अभिनवगुप्त (१०वीं शताब्दी) ने इस ओर ध्वनि-सिद्धान्तों का समन्वय आरम्भ कर दिया था। पण्डितराज जगन्नाथ (१७वीं शताब्दी) तक यह पूर्ण

हो गया। यहीं से हिन्दी के 'रीति-काल' का आरम्भ होता है। अतएव हिन्दी रीति-ग्रन्थों को जो परम्परा प्राप्त हुई, उसमें ध्वनि और रस का विभेद समाप्त हो चुका था।

रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि—इन पाँच सिद्धान्तों के मूल में प्रायः दो आधार ठहरते हैं—एक आत्मा (आन्तरिक पक्ष) को सम्पूर्ण महत्त्व प्रदान करता है और दूसरा शरीर (बाह्यपक्ष) को यह गौरव प्रदान करने का पक्षपाती है। रस और ध्वनि आत्मवादी हैं। अलंकार, रीति और वक्रोक्ति शरीरवादी हैं। इस प्रकार मूलतः दो सम्प्रदाय ठहरते हैं—रस-सम्प्रदाय और अलंकार-सम्प्रदाय। संस्कृत के अन्तिम आचार्य पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य को 'रमणीयार्थ प्रतिपादक' शब्द कहा। आत्मा के साथ-साथ इन्होंने चमत्कार को भी महत्त्व-प्रदान किया। उस प्रकार इन्होंने रस और ध्वनि के विभेद को समाप्त करके रस मत की प्रतिष्ठा कर दी। हिन्दी के आचार्यों में केवल केशवदास अलंकारमत के अनुयायी हुए, शेष आचार्यों ने रस मत को स्वीकार किया। पंडितराज ने एक और काम किया। इन्होंने लक्षण ग्रन्थ लिखते समय स्वयं विरचित उदाहरण प्रस्तुत किए।

हिन्दी को शृंगार-साहित्य भी संस्कृत से उत्तराधिकरण के रूप में प्राप्त हुआ। वह एक प्रकार से संस्कृत साहित्य का संशोदित एवं परिवर्द्धित रूप है। संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत हमको शृंगार-रस की धारा अविच्छिन्न रूप से व्याप्त दिखाई देती है। उच्चतम अनुभूति में शृंगार आध्यात्मिक अनुभूति का प्रतीक बन जाता है और निम्नतम कोटि में वासना के संयोग से कुछ मलिन-सा प्रतीत होने लगता है। आध्यात्मिक अनुभूति के रूप में हम उसको भक्ति-भावना तथा अन्य अनुभूति के रूप में हम उसे लौकिक शृंगार भावना कहते हैं। दोनों धाराओं के पीछे संस्कृत-साहित्य की सुनिश्चित परम्परा है। संक्षेप में हिन्दी के शृंगार-साहित्य के पीछे संस्कृत-साहित्य की तीन परम्पराएँ दिखाई देती हैं—

(क) गाथा-सप्तसई, अमरुक शतक तथा आर्यासप्तशती के शृंगारमुक्तक और शृंगारतिलक, शृंगारशतक और पंचाशिका आदि के ऐहिकमुक्तक (ख) दुर्गासप्तशती, चण्डीशतक आदि स्तोत्रग्रन्थ, शिवपार्वती, राधाकृष्ण की लीलाओं के वर्णन तथा बंगाल-बिहार में प्रचलित राधा-कृष्ण की भक्ति से

सम्बन्धित छन्द, तथा (ग) कामशास्त्र की चिन्ता धारा । इस परम्परा में वात्स्यायन के कामसूत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं । अस्तु ।

शृंगार-रस के आलम्बन-विभाव के अन्तर्गत नायिका-भेद-कथन काव्यांग का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग ठहरता है । हिन्दी के कवियों को यह परम्परा भी संस्कृत-साहित्य से प्राप्त हुई है । नायिका-भेद की परम्परा काव्यशास्त्र की परम्परा के साथ ही प्रारम्भ होती है । इस विषय का विवेचन भरतमुनिकृत 'नाट्यशास्त्र' से प्रारम्भ होता है । इसके पश्चात् अग्निपुराण में इसकी चर्चा उपलब्ध होती है । इसके पश्चात् रुद्रट, धनंजय, भोज, मम्मट, रुय्यक, भानुदत्त, वाग्भट्ट द्वितीय, विश्वनाथ, केशवमित्र आदि आचार्यों के ग्रन्थों में नायिका-भेद की विशद चर्चा मिलती है । धनंजयकृत 'दशरूपक', भानुदत्तकृत 'रस मंजरी' और विश्वनाथकृत 'साहित्य दर्पण' इस विषय के मुख्य ग्रन्थ हैं । हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने 'रसमंजरी' के अनुसार ही नायिका-भेद-कथन की परिपाटी निश्चित की है ।

हिन्दी रीतिकालीन काव्य के अन्तर्गत राधा-कृष्ण की शृंगारचर्चा व्याप्त है । इस शृंगार-साहित्य पर निम्बार्काचार्य की भक्ति-भावना और श्री दल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग का विशेष प्रभाव पड़ा ।

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में राधा के नाम का नितान्त अभाव नहीं है, तथापि प्रस्तुत रूप में राधा की चर्चा वहाँ अनुपलब्ध है । 'राधा' के नाम और स्वरूप के विकास के अध्ययन के निष्कर्ष रूप हम कह सकते हैं कि धार्मिक क्षेत्र में निम्बार्काचार्य को और काव्य-जगत् में 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव को राधा की प्रतिष्ठा का श्रेय प्राप्त है । जयदेव से प्रभावित होकर विद्यापति ने राधाकृष्ण के शृंगारपरक काव्य का प्रणयन किया । इस प्रकार हिन्दी में विद्यापति ने राधाकृष्ण-विषयक साहित्य की परम्परा प्रारम्भ हुई और उसका पूर्ण विकास हुआ । इसी परम्परा के अन्तर्गत हिन्दी के मध्यकाल (भक्तिकाल) में कृष्ण भक्तिकाव्य का स्रजन हुआ । रीतिकाल में पहुँचकर उसमें लौकिक शृंगार का समावेश हो गया और उसका स्वरूप कुछ विकृत हो गया ।

यहाँ एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है । वैष्णवों की कृष्ण भक्ति शाखा की प्रेमलक्षणा-भक्ति ने कवियों के मन में मानव-जीवन की विलासिता सम्बन्धी सहज दुर्बलता का पोषण किया ।

मुसलमानों के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात् हिन्दुओं और

मुसलमानों दोनों ही की धार्मिक कट्टरता में शैथिल्य आ गया था। संघर्ष-काल में भक्त कवियों ने असुरों के संहारक मर्यादापुरुषोत्तम राम को अपनी कविता का विषय बनाया था, परन्तु अब भक्ति-भावना में रागानुगा-भक्ति एवं प्रेम-लक्षणा-भक्ति का समावेश हो गया। यहाँ तक कि नायिका-भेद-कथन को भक्त कवियों का समर्थन प्राप्त हो गया। दूसरी ओर मुसलमान सूफी कवि अपनी प्रेम की पीर का पाठ पढ़ा रहे थे। इन सूफी कवियों के इश्के-मजाजी के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दुओं की प्रेम-लक्षणा भक्ति में कामुकता का समावेश हो गया। आव्यात्म-भावना से रहित कवियों के हाथों में प्रेम-लक्षणा-भक्ति के लौकिक सौन्दर्य एवं प्रेम का स्वरूप विकृत हो गया।

हिन्दू और मुसलमानों के सम्पर्क के फलस्वरूप सामान्य बोलचाल की भाषा—उर्दू की उत्पत्ति हुई। स्पष्ट है कि फारसी भाषा और सूफी मत के प्रभाव के कारण उर्दू की कविता में आरम्भ से ही शृंगारी भावनाओं का प्रधान्य रहा। विलासी बादशाहों के दरबारों में प्रश्रय प्राप्त हो जाने के कारण उर्दू कविता में भी साकी और शराब, जाम और प्याला आदि की चर्चाएँ घर कर गई। मुरा और मुराही गायरी की विशेषताएँ बन गई। हिन्दी के दरबारी कवि इस प्रभाव से भला किस प्रकार अछूते रह सकते थे ?

हाल की 'सतसई' रीतिकाव्य का सर्वप्रथम प्रेरक ग्रन्थ है। इसकी कोमलता मतिराम में प्राप्त होती है। इसके बाद अमरुक शतक, आर्यासप्तशती, काव्या-नुशासन (हेमचन्द्र), मुंज के दोहे, (अपभ्रंश), शृंगारतिलक आदि की परम्परा मिलती है।

हिन्दी में वीरगाथाकाल में ही हमको रीति के प्रति सजगता दिखाई देती है। पृथ्वीराजरासो में पद्मावती का 'नखशिख' इसका उदाहरण है। इसके बाद विद्यापति में रीतिसंकेत असंदिग्ध रूप में मिलते हैं।

कृपाराम ने संवत् १५६८ में हिततरंगिणी की रचना की और अपने पूर्व रचित ग्रन्थों की ओर स्पष्ट संकेत किया—

बरनत कवि सिंगार रस छद् बड़े बिस्तार ।

में बरन्यो दौहान विच यातें सुधर बिचारि ॥

इसके पश्चात् रीति की गौरव-प्रतिष्ठा 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में हुई। केशवदास ने विचारपूर्वक संस्कृत रीतिकाव्य की परम्परा को हिन्दी में अवतरित किया और साथ ही अपने व्यवहार में उसको वांछित महत्त्व प्रदान

किया। अतः रीतियुग के प्रवर्तन का गौरव केशवदास को ही दिया जाना चाहिए।

आचार्य और कवि के विभेद की समाप्ति—काव्य-रचना के पश्चात् ही लक्षण-ग्रन्थों की रचना होती है। संस्कृत साहित्य में हमको यही क्रम दिखाई पड़ता है। संस्कृत साहित्य में पहले काव्य-रचनाएं लिखी जा चुकी थी। उनके पश्चात् उनके आधार पर काव्य के लक्षण स्थिर किये गये और फिर उन लक्षणों को स्पष्ट एवं स्थापित करने के लिए तत्सम्बन्धित उत्तम, शुद्ध और सर्वांगपूर्ण पद्य उदाहरणों के रूप में उपस्थित किये गये। लक्षणा की कसौटी पर जो रचना खरी नहीं उतरती थी, उसकी उपेक्षा कर दी जाती थी। अधम श्रेणी का काव्य कहकर कभी-कभी उसकी निन्दा भी कर दी जाती थी।

निर्धारित लक्षणों के अनुसार शुद्ध उदाहरण देने के लिए आचार्यगण स्वरचित रचना के प्रति आग्रह नहीं करते थे। वे अन्य आचार्यों एवं कवियों द्वारा निर्मित पद्य को निस्संकोच एवं स्वतन्त्रतापूर्वक ग्रहण कर लिया करते थे। इस प्रकार संस्कृत के 'रीति-साहित्य' के अन्तर्गत कवि और आचार्य—दो पृथक् व्यक्ति थे, उनकी दो विभिन्न श्रेणियाँ थी। रीतिग्रन्थ पण्डित वर्ग के लिए लिखे जाते थे और उनके अन्तर्गत तर्कसम्मत तथा शुद्धतम विवेचन अभीष्ट था।

संस्कृत रीति परम्परा के अन्तिम आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने लक्षणा के अनुरूप उदाहरण देने के लिए स्वनिर्मित रचनाएँ ही प्रस्तुत कीं। उनका कथन था कि मैंने इस ग्रन्थ में उदाहरणों के अनुरूप काव्य बना कर रखा है, दूसरे से कुछ भी नहीं लिया है, क्योंकि कस्तूरी उत्पन्न करने की शक्ति रखने वाला मृग क्या पुष्पों की सुगंध की ओर मन भी लाता है। अपनी सुगंध से मस्त उसे क्या परवाह है कि वह पुष्पों की गंध को याद करे? यथा—

निर्माय नूतन मुदाहरणानुरूपं
काव्य मयाऽत्र निहितं न परस्य किञ्चित् ।
कस्तूरिका जननशक्ति भृतामृगेण
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्ध ॥^१

१. गवोक्ति, पृ० सं० ३, प्रथम खण्ड, हिन्दी रस गंगाधर, पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी।

इस प्रकार पण्डितराज ने एक 'नवीन मार्ग' प्रस्तुत किया। हिन्दी के रीति-कवियों ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया और इस प्रकार हिन्दी के रीति-साहित्य में आचार्य और कवि का भेद न रहा। यह एक परिपाटी बन गई कि पहले एक दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिख देते थे और फिर उसके नीचे उदाहरण के लिए स्वविरचित कवित्त या सर्वैया लिख दिया जाता था। ऐसी स्थिति में काव्यागों के विस्तृत विवेचन का विकास-क्रम रुक जाना स्वाभाविक था, क्योंकि अपनी ढफली के सामने दूसरे का राग कौन सुनता ? तर्क द्वारा खण्डन-मंडन तथा नवीन सिद्धान्त प्रतिपादन की प्रणाली प्रायः समाप्त हो गई।

रीतिग्रन्थ की शैलियाँ—रीति-रचना के लिए संस्कृत के ग्रन्थ ही आधार रहे थे। इस क्षेत्र में संस्कृत में तीन शैलियाँ प्रचलित थीं—काव्य-प्रकाश की शैली शृंगारतिलक, रसमंजरी आदि की शैली तथा चन्द्रालोक की शैली। हिन्दी के रीति-आचार्यों ने तीनों ही शैलियों में रचनाएँ लिखीं। यथा—

(क) **काव्य-प्रकाश की शैली**—इस शैली के अन्तर्गत काव्य-प्रकाश के समान काव्य के समस्त अंगों का न्यूनाधिक विवेचन किया जाता है। इस श्रेणी के मुख्य ग्रन्थ है—चिन्तामणिकृत 'काव्य विवेक' और कवि 'केलकल्पतरु', 'सेनापतिकृत, 'काव्य कल्पद्रुम' तथा देवकृत 'काव्यरसायन'।

(ख) **शृंगारतिलक, रसमंजरी आदि की शैली**—इस शैली के अन्तर्गत शृंगाररस के विभिन्न अंगों—विशेषकर नायिका-भेद का निरूपण किया जाता है। इसे हम शृंगारमयी शैली कह सकते हैं। इस श्रेणी के प्रमुख ग्रन्थ हैं—केशवदासकृत, 'रसिकप्रिया', मतिरामकृत 'रसरज', देवकृत 'भावविलास', 'रसविलास' और 'भवानी विलास', पद्माकरकृत 'जगद्विनोद', वेनीप्रवीन कृत 'नवरसतरंग', इत्यादि।

(ग) **चन्द्रालोक की शैली**—यह अलंकार-निरूपण की संक्षिप्त शैली है। इसके अनुसार अलंकारों के संक्षिप्त रूप से लक्षण और उदाहरण दिये जाते हैं। इस श्रेणी के मुख्य ग्रन्थ ये हैं—करनेसकृत 'श्रुतिभूषण', सूरतिनिश्चकृत 'अलंकारमाला', मतिरामकृत 'ललित ललाम' तथा पद्माकरकृत 'पद्माभरण'। अलंकार निरूपण के लिए अधिकांश कवियों ने जयदेव के 'चन्द्रालोक' तथा अप्पयदीक्षित के 'कुवलयानन्द' का ही अवलम्बन ग्रहण किया। केशवदास ही एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने दण्डीकृत काव्यादर्श को अपनाया। हिन्दी रीतिकाल का अलंकार-निरूपण वर्णनात्मक ही हुआ।

पूर्ववर्ती हिन्दी काव्य का प्रभाव—भक्तिकाल के अन्तिम चरण में हिन्दी के रीतियुग के आगमन की सूचना प्राप्त हो गई थी। रहीम के नायिका-भेद जैसे रीतिग्रन्थों की रचना हो चुकी है और भक्तिकाल तथा रीतिकाल के मध्य विभाजक रेखा खींचना अत्यन्त दुस्तर है। केशवदास दोनों युगों के मध्य विष्कम्भक माने जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी के रीति-ग्रन्थकारों ने जहाँ सस्कृत साहित्य से जीवनतत्त्व प्राप्त किया, वहाँ उनके ऊपर पूर्ववर्ती हिन्दी कवियों की भी छाप पड़ी। यथा—

(क) **भक्ति-भावना**—राम और कृष्ण मुख्यतया भक्त कवियों के आराध्य रहे हैं। रीतिकाल में राम और कृष्ण दोनों से सम्बन्धित काव्य का प्रणयन हुआ। केशवदाम, सेनापति तथा पद्माकर ने रामायण के विशिष्ट अंशों के भक्त हृदय की तल्लीनीतापूर्ण वर्णन लिखे। केशवदास ने तो महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' की रचना की। मधुसूदनदास का 'रामाश्वमेधयज्ञ' इस युग का रामभक्ति विषयक एक सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है। प्रायः समस्त रीतिकालीन कवियों ने कृष्णभक्तिपरक रचनाएँ लिखीं। शृंगारपरक भक्तियुक्त रचनाएँ लिखनेवालों में नागरीदाम, चरनदास तथा उनकी दो शिष्याएँ सहजोबाई और दयाबाई मुख्य हैं।

(ख) **प्रबन्ध-काव्य**—प्रेममार्गी कवि (मझन, कुतुबन, जायसी आदि) ने हिन्दी में प्रबन्ध-काव्य प्रणयन की परम्परा चलाई और गोस्वामी तुलसीदास ने उसे पुष्ट किया। प्रबन्ध-काव्य के दो रूप प्रचलित थे—वर्णनात्मक और कथात्मक। रीति-काल में दोनों ही प्रणालियों पर प्रबन्ध-काव्य लिखे गये।

(१) **वर्णनात्मक**—नूर मुहम्मद की दुन्द्रावती, चन्दन का सीत-बसन्त, मंचित का कृष्णायन और ब्रजवासीदास का ब्रजविलास उल्लेखनीय हैं।

(२) **कथात्मक**—इसमें उल्लेखनीय हैं—लाल का 'छत्रप्रकाश', सूदन का 'सुजानचरित', चन्द्रशेखर का 'हम्मीरहठ', जोधराज का 'हम्मीररासो', तथा मधुसूदन का 'रामाश्वमेध' यज्ञ।

(ग) **वीरगाथाकाल का वीर-यश-प्रशस्ति गायन**—सूर के श्याम तुलसी के राम और मीरा के गिरधरगोपाल रीतिकाल में भूषण के शिवाजी, लाल के छत्रसाल और पद्माकर के जगतसिंह बन गये। वीर यशप्रशस्ति-गायन की परम्परा वीरगाथाकाल से चली आ रही थी। रीतियुग के कविजनों ने अपने आश्रयदाताओं को वीररसपरक रचनाओं द्वारा स्फूर्ति भी प्रदान की

और जी खोलकर उसी प्रशंसा भी की। केशवदास का 'वीरसिंह देवचरित,' पद्माकर की 'हिम्मत बहादुरविरुदावली', जोधराज का 'हम्मीररासो', लाल का 'छत्रसाल', 'छत्रप्रकाश' आदि ग्रन्थ इस युग में वीरकाव्य-परम्परा का स्मरण कराते हैं। इन ग्रन्थों में युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और दयावीर के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

विभिन्न आश्रयदाताओं के यहाँ रहनेवाले कवियों की प्रशस्त रचनाओं में हमें पुनरावृत्ति दिखाई देती है। यह स्वाभाविक ही था।

रीति-काल का आरम्भ—आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार हिन्दी के आदिकवि पुष्प ने ८वीं शताब्दी के आरम्भ में कोई अलंकार-ग्रन्थ लिखा था। किन्तु इसका कोई पता नहीं है। हिन्दी का सर्वप्रथम उपलब्ध रीति-ग्रन्थ कृपारामकृत 'हिततरंगिणी' है। आचार्य शुक्ल ने इसका रचनाकाल संवत् १५६८ माना है। उसी समय के लगभग चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने 'शृंगार-सागर' नामक एक ग्रन्थ शृंगार-सम्बन्धी लिखा। नरहरि कवि के साथी करनेश कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' नामक तीन ग्रन्थ अलंकार-सम्बन्धी लिखे।

सूरदास की 'साहित्य-लहरी' (रचना-काल १६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) में 'रीति' के बीज मिलते हैं। उनके कूटों में अलंकारों के उदाहरण मिलते हैं तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति दिखाई देती है। नन्दादाम का अपने किसी मित्र के कहने से—नायिका-भेदकथन प्रसिद्ध ही है—

“एक मीत हमसों अस गुन्यों, मैं नायिका भेद नहि गुन्यों।”

× × × बिन जानै यह भेद सब प्रेम न परचे होय ॥

इतना सब हो जाने पर हिन्दी के किसी भी कवि ने संस्कृत साहित्य शास्त्र की भाँति शास्त्रीय-पद्धति पर भी काव्यागों का निरूपण नहीं किया था। यह कार्य केशवदास ने रसिक-प्रिया और कवि-प्रिया—नामक दो रीति-ग्रन्थ लिख कर (संवत् १६१२ से संवत् १६७४) किया। केशव अलंकारवादी और चमत्कार-प्रिय कवि थे। इनका स्पष्ट कथन था कि—

जदपि सुजाति सुलच्छिनी सुबरन, सरस सुवृत्त ।

भूषनु बिनु नहि राजहीं कविता, वनिता मित ॥

(कविप्रिया ५-१)

केशव का यह मत रीति-सम्प्रदाय के सर्वप्रथम प्रतिनिधि भामह के समान

ही है —“न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्” (काव्यालंकार १।१३)
अर्थात् कविता का सुन्दर मुख भी भूषण बिना शोभा नहीं देता है ।

इनके बाद लगभग ५० वर्ष तक हिन्दी का कोई रीति-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है । संवत् १७०० के आसपास चिन्तामणि त्रिपाठी ने ‘काव्य-विवेक’ ‘कवि-कुल-कल्पतरु’ और ‘काव्य-प्रकाश’, ये तीन ग्रन्थ लिखे । यह रस-सम्प्रदाय के अनुयायी थे । इसके साथ ही रीतिग्रन्थों की अखण्ड-परम्परा दिखाई देती है । परवर्ती आचार्यों ने रस-मत का ही अनुगमन किया । केशव की अलंकार-वादी परम्परा उनके साथ ही समाप्त हो गई । ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना सर्वथा स्वाभाविक है कि रीतिकाल का आरम्भ केशवदास से माना जाय अथवा चिन्तामणि त्रिपाठी से । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने केशवदास को भक्ति-काल के फुटकल कवियों के अन्तर्गत रखा है और रीति-काल का आरम्भ चिन्तामणि त्रिपाठी से माना है । ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में रीति-काल के सामान्य परिचय के प्रारम्भ में उन्होंने लिखा है—

इसमें संदेह नहीं कि काव्य-रीति का सम्यक् समावेश पहले-पहल आचार्य केशव ने ही किया, पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की ‘कविप्रिया’ के प्रायः पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं । यह परम्परा केशव के दिखाये हुए पुराने आचार्यों भामह, उद्भट आदि के मार्ग पर न चलकर परवर्ती आचार्यों के परिष्कृत मार्ग पर चली, जिसमें अलंकार-अलंकार्य का भेद हो गया था । × × × हिन्दी रीतिग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली, अतः रीति-काल का आरम्भ उन्हींसे मानना चाहिए ।

इसके विपरीत डा० श्यामसुन्दरदास ने केशवदास से ही ‘रीतिकाल’ का आरम्भ माना है । ‘हिन्दी भाषा और साहित्य’ में वह लिखते हैं—

“यद्यपि समय-विभाग के अनुसार केशवदास भक्तिकाल में पड़ते हैं और यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास आदि के समकालीन होने तथा ‘रामचन्द्रिका’ आदि ग्रन्थ लिखने के कारण यह कोरे रीतिवादी नहीं कहे जा सकते, परन्तु उन पर पिछले काल के संस्कृत साहित्य का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि अपने काल की हिन्दी काव्यधारा से पृथक् होकर वह चमत्कारवादी कवि हो गये और हिन्दी में रीतिग्रन्थों की परम्परा के आदि आचार्य कहलाये ।”

हमारे मतानुसार दोनों ही मत युक्तियुक्त है। जो परम्परा को प्रधानता दें, वे चिन्तामणि त्रिपाठी से रीतिकाल का आरम्भ मान सकते हैं। और जो ग्रन्थ-रचना को महत्त्व दें वे केशवदास को रीतिकाल का प्रथम आचार्य—कवि मान सकते हैं। विचार-स्वातन्त्र्य के अवसर पर मतभेद होना स्वाभाविक है। यह तो निर्विवाद है ही कि केशवदास ने ही शास्त्रीय पद्धति पर रीति-ग्रन्थ की रचना सर्वप्रथम की थी। अस्तु।

रीति-काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—(१) रीतिकाल में दो प्रवृत्तियाँ अभिन्नरूप से गुथी हुई मिलती हैं—(i) रीति निरूपण अथवा आचार्यत्व तथा (ii) शृंगारिकता।

(२) काव्यांगों के निरूपण के लिए तीन शैलियाँ अपनाई गई—(i) काव्य-प्रकाश की शैली। (ii) शृंगारतिलक की शृंगारी शैली और (iii) चन्द्रलोक की शैली।

(३) इस युग में तीन प्रकार की रचनाएँ लिखी गई (i) शृंगार सम्बन्धी, (ii) भक्ति सम्बन्धी और (iii) नीति सम्बन्धी उक्तियाँ। भक्ति और नीति सम्बन्धी उक्तियाँ इतनी कम हैं कि उनका महत्त्व अत्यन्त गौण हो गया है। इस प्रकार वर्ण्यविषय शृंगार ही रहा। उस सामंतीय वातावरण में ऐसे उपादान एकत्र हो गये थे, जो अकुठित शृङ्गार की अभिव्यञ्जना से पूर्ण सहायक सिद्ध हुए।^१

भक्ति और नीति सम्बन्धी उक्तियाँ कवियों के जीवन के अवसाद और जीवन की क्लान्ति की द्योतिका हैं।

(४) इस युग में रस, ध्वनि और अलंकार तीनों सम्प्रदायों का अनुसरण हुआ। उनमें रस-सम्प्रदाय की प्रधानता रही।^२

(५) इस युग में कवि और आचार्य का भेद समाप्त हो गया। आचार्य शुक्ल के मतानुसार यह एकीकरण अच्छा नहीं हुआ। × × × हिन्दी के लक्षण-ग्रन्थ की परिपाटी पर रचना करनेवाले जो सैकड़ों कवि हुए, वे आचार्य

१. पृ० सं० १८७, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण।

२. केशव के उपरान्त रीतिकाल में होनेवाले कवियों ने किसी वाद का निर्देश नहीं किया। वे रस को ही काव्य की आत्मा या प्रधान वस्तु मान-कर चले।

कोटि में नहीं आ सकते । वे वास्तव में कवि ही थे । उनमें आचार्यत्व के गुण नहीं थे ।^१

(६) रसों में शृंगार-रस की प्रधानता रही । समस्त आचार्यों ने शृंगार-रस का सांगोपांग निरूपण किया—अन्य रसों की चर्चा मात्र कर दी । रुद्रभट्ट और भोज के अनुकरण पर शृंगारवाद की प्रतिष्ठा-सी हो गई । सभी ने एक स्वर से शृंगार-रस को 'रसराज' स्वीकार किया । यथा—

नव हूँ रस को भाव, बहुतिन के भिन्न विचार ।

सबके केसवदास हरि, नायक है शृंगार ॥

(रसिकप्रिया, केशवदाम)

उन्मादिक संचरत तहं, संचारी है भाव ।

कृष्ण देवता स्याम रंग, सो सिंगार रस भाव ।

(जगद्विनोद, छन्द मं० ६१३ पद्माकर)

महाकवि देव ने तो यहाँ तक कर दिया कि मुख्य रस शृंगार-रस है । अन्य रस 'शृंगार' से ही उत्पन्न होते हैं तथा उसीमें लीन हो जाते हैं—

नवरस मुख्य शृंगार मेंह,

उपजत बिनसत सकल रस

ज्यों सूक्ष्म थूल कारन प्रगट

होत महाकारन बिबस

(७) शृंगार-रस-वर्णन में कई विशेषताएँ दिखाई देती हैं । यथा—

(क) विप्रलम्भ-शृंगार की प्रधानता रही ।

(ख) संयोग-शृंगार के वर्णन कहीं-कहीं अमर्यादित हो गये हैं तथा अश्लीलता भी सीमा का स्पर्श करते हुए दिखाई देते हैं ।

(ग) शृंगार रस का सावयव (स्थायी भाव, संचारी भाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव तथा उनका विभेद) निरूपण किया गया ।

(घ) नायिका-भेद-कथन अत्यन्त विस्तार के साथ किया गया ।

भानुदत्त की 'रसमंजरी' और विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण' नायिकाभेद-कथन के प्रमुख आधार रहे । इस युग के प्रत्येक कवि ने इस विषय पर

लेखनी चलाई। इस दिशा में हिन्दी के कवियों ने सूक्ष्म निरीक्षण और गहन मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया। यह कथन पूरे दो सौ वर्षों तक हुआ और इन क्षेत्रों में हिन्दी के कवि अपने अग्रज संस्कृत के कवियों को पीछे छोड़ गये। नायिकाभेद-कथन में मुक्तक छन्दों द्वारा शृंगार-रस के विभाव पक्ष का विशेष रूप से पोषण हुआ।

प्रेम लक्षणा भक्ति-भावना के प्रभाववश कृष्ण और राधा तत्कालीन अति-रंजित वानावरण के रंग में रंग कर सामान्य नायक-नायिका बन गये हैं।^१

(ड) **नखशिख-वर्णन**—शृंगार रस की आलम्बन नायिका के अंगों का वर्णन एक स्वतन्त्र विषय बन गया और नखशिख-वर्णन में नमालूम कितने ग्रन्थ लिखे गये। नखशिख-वर्णन के अन्तर्गत नायिका के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया और उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग का पृथक्-पृथक् भी वर्णन किया गया। एक-एक अंग को लेकर शतमहस्र छन्दों की रचना की गई। अलंक-शतक और 'तिलहजारा' इस प्रवृत्ति के उदाहरण हैं।

नखशिख-वर्णन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। संस्कृत के अनेक कवियों ने इस प्रणाली पर रचनाएँ लिखी हैं।^२ हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों में भी हमको नखशिख की शैली पर सौन्दर्य वर्णन मिलता है। हिन्दी के प्राचीनतम ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' में 'मनहु कला मसिभान कला सोलहसो बन्निग्र' आदि वाक्यों द्वारा पद्मावती के रूप-वर्णन में हमको इस विषय का पूर्वरूप उपलब्ध होता है। आगे चलकर जायसी के 'पद्मावत' में हमको पद्मिनी के 'शिखनख' के दर्शन होते हैं। भक्तिकाल में भक्तकवियों ने भगवान के अनन्त सौन्दर्य समन्वित विश्वमोहक स्वरूप का जी खोलकर वर्णन किया। उन्होंने भगवान के अंग-प्रत्यंग का, चोटी से लेकर पैर के नाखून तक एक-एक अंग का, भाव-पूर्ण मनोमुग्धकारी वर्णन किया। रीतिकाल में नखशिख-वर्णन एक स्वतन्त्र विषय ही बन गया। शृंगार-रस-निरूपण के अन्तर्गत भक्तिकालीन परिपाटी आ

१. ✓ तो पर बारौ उरबसी, सुनि राधिके सुजान।

तू मोहन के उरबसी, ह्वँ उरबसी समान॥

(दोहा सं० २५, बिहारी रत्नाकर)

२. (क) स्वयंवर के समय सीता का वर्णन। (अध्यात्म रामायण ६।२६-३०)

(ख) पार्वती के रूप लावण्य का वर्णन (कुमारसम्भव १।३६-४० कालिदास)

गई, जो कृष्ण-राधा के नखशिख-वर्णन से आरम्भ होकर लौकिक नायक-नायिकाओं पर जाकर रुकी। रीतिकाव्यों का नखशिख-वर्णन विलक्षणता-प्रदर्शन की सीमा पर पहुँच गया।

नखशिख-वर्णन के वर्ण्य-विषय इस प्रकार रहे—पग-तल-पग, पद लालिमा, एड़ी, पदांगुलि, पद-नख, गुल्फ, पिंडुरी, जंघा, नितम्ब, कटि, नाभि, उदर, त्रिवली, रोम-राजि, कुच, कंचुकी, युत कुच, कर-तल, अंगुलि, कर-नख, पीठ, ग्रीवा, भुजा, चिबुक, चिबुक का तिल, अधर, दशन, ओष्ठ, वाणी, मुख-राग, मुसकान, कपोल, कपोलों की गाढ़, कपोल का तिल, कान, नाक, उनके आभूषण, लोचन, नेत्र, तिल, दृगकौर, चितवन, भृकुटि, भाल, मुख-मण्डल, केश अलक, पाटी मांग वेणी, अंग-वास, अंग दीप्ति, सर्वांग सकुमारता तथा सोलह शृंगार।^१

(८) ऊहात्मक वियोग-वर्णन—इस काल में वियोग के वर्णन बढ़ा-चढ़ाकर फारसी की ऊहात्मक-पद्धति पर किये गये। इन वर्णनों में विरहजन्य वेदना तो कम है, वियोगजन्यताप की बाहरी नाप-जोख अधिक है। दूर की कौड़ी के कारण ये वर्णन प्रायः हास्यास्पद एवं अस्वाभाविक भी हो गए हैं।

इसी प्रकार विरह के बाह्योपचारो-शीतललेप, गुलावजल, खस के पर्दे आदि के वर्णन किये गये हैं।

(९) ऋतु-वर्णन—रीतिकाल के कवियों ने ऋतु-वर्णन प्रायः उद्दीपन विभावान्तर्गत ही किया। कुछ वर्णन निरपेक्ष भी हैं। पहले तो वे विरल हैं और फिर उनमें प्रायः चमत्कार-प्रियता के ही दर्शन होते हैं। रीति-काल के कवियों ने ऋतुओं के उद्दीपन पक्ष में ही अधिक रुचि दिखाई। ऋतुवर्णन को

१. (क) सौन्दर्य की सार्थकता की कसौटी प्रायः इस प्रकार मानी गई—

देखत ही जो मन हरै, सुख अंखियनु को देय।

रूप बखाने ताहि जो, जग चेरी करि लेय। (देव)

(ख) भक्ति काल में शृंगार-वर्णन मर्यादित रहा—

जगत मातु पितु सम्भु भवानी। तेहिंसिगार कहउं बखानी। (तुलसी)

रीतिकाल में यह मर्यादा टूट गई और राधा-कृष्ण के सौन्दर्य-वर्णन के नाम पर कतिपय कवियों ने कुरुचिपूर्ण वर्णन भी लिख डाले।

उद्दीपन के अन्तर्गत रख देने का परिणाम यह हुआ कि वे नायिका के संयोग और वियोग के साथ सम्बद्ध हो गए। प्रत्येक ऋतु दोहरी दृष्टि से देखी गई।

ये ऋतु-वर्णन दो शैलियों पर लिखे गये—षट्ऋतु वर्णन तथा बारहमासे।

षट्ऋतु वर्णन के अन्तर्गत—वर्ष के छह विभाग किये गये—वसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त और शिशिर। इनके अन्तर्गत वन, उपवन, पवन, सरोवर, चन्द्र, चंद्रिका, होली, हिंडोला, वर्षा की रिमझिम, झिल्ली की झंकार, कोयल की बुक, बिजली की चमक, पपीहा की पुकार भोरों की गुहार आदि के सुन्दर और मार्मिक वर्णन किये गये।

महत्त्व की दृष्टि से षट्ऋतुओं में वसंत सर्वश्रेष्ठ है। उसके बाद क्रमशः पावस और शरद का स्थान है। रीति-काल में मुख्य इन्हीं तीन ऋतुओं के वर्णन मिलते हैं। शेष तीन ऋतुओं के वर्णन को गौण स्थान मिला है—अथवा वे केवल परम्परा के निर्वाह मात्र के लिए किये गये हैं।

बारहमासे वियोग-वर्णन के अन्तर्गत लिखे गये हैं। उनमें वर्ष के बारह महीनों को एक-एक करके लिया गया है और उसके उद्दीपक प्रभाव का वर्णन किया गया है। इनके द्वारा वियोगिनियों की विरह-वेदना उनके सन्देश, उनके उपालम्भ आदि के वर्णन किये गये। जायसी विरचित पदमावत् में नागमती के विरह में सम्बन्धित हमें हिन्दी का सर्वप्रथम बारहमासा मिलता है।

इन वर्णनों में नैसर्गिक सौन्दर्य की अपेक्षा उद्दीपक प्रभाव का ही अधिक कथन किया गया है।

(१०) **प्रशस्तियाँ**—उर्दू के कसीदों के अनुकरण पर रीति-काल के कवियों ने कविता 'स्वान्तःसुखाय न करके स्वामिनः-सुखाय ही लिखी। उन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए भरपूर सुशामद की।

(११) **पाण्डित्य-प्रदर्शन**—इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए काव्यशास्त्र से सम्बन्धित चमत्कार-प्रदर्शन में कोई बात उठा नहीं रखी। ये कवि विविध विषयक जानकारी, अलंकार-प्रदर्शन तथा शब्द-चमत्कार के प्रदर्शन द्वारा पुरस्कार प्राप्त किया करते थे।

कवियों की स्वाभिमानिनी प्रवृत्ति के प्रस्फुटन को हम इसी प्रवृत्ति का आवश्यक अंग मानते हैं। प्रत्येक कवि ने अपने छन्दों में अपने नाम का समावेश किया है। सेनापति ने अपनी कविता को 'मूढ़न काँ अगम' तक कह दिया और यहाँ तक लिख दिया कि कवित्त के पूरे चारों चरणों तक की चोरी कर

ली जाती है—“सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की ।”^१ घनानन्द ने तो यहाँ तक गर्वोक्ति की कि—

“लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत ।”^२

(१२) काव्य की भाषा ब्रजभाषा—रीतिकाव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही । इसमें अवधी का सुखद संयोग हुआ । ब्रजभाषा का बहुत ही परिमार्जित स्वरूप निखरा । ब्रजभाषा में संस्कृत जैसी कोमलकान्त पदावली का निर्माण हुआ ।

इन दिनों ब्रजभाषा के काव्य प्रयोग की सीमा अत्यन्त विस्तृत हो गई थी और उसमें कई बोलियों अवधी, बुंदेली, राजस्थानी आदि के शब्द स्वतन्त्रतापूर्वक ग्रहीत हो गये थे । भिखारीदास के मतानुसार ब्रजभाषा में ब्रज, मागधी (पूर्वी भाषा, अवधी आदि) संस्कृत, नाग (अप्रभ्रंश, भवन) खड़ी बोली और फारसी का सम्मिश्रण था । ब्रज भाषा उन दिनों पट्विध भाषा बन गई थी—

भाषा ब्रजभाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोइ ।

मिले संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रकट जु होइ ॥

ब्रज मागधी मिलै अमर, नाग जमन भाषानि ।

सहज पारसी हैं मिलै, षट विधि कवित्त बखानि ॥

[भाषा लक्षण, दोहा मंख्या १४, १५ (१), पृ० सं ५, काव्य, निर्णय भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वितीय खण्ड, ना० प्र० सभा, काशी, प्रथम संस्करण]

(१३) मुहावरे—रीति-काल में आँख और मन सम्बन्धी मुहावरों का विशेषरूप से प्रयोग हुआ ।

(१४) चित्रात्मक-वर्णन—अनुभाव-विधान के द्वारा शारीरिक चेष्टाओं के सजीव वर्णन किये गये । इन वर्णनों में गतिशीलता के भी दर्शन हो जाते हैं ।

(१४) विदेशी शब्दों का प्रयोग—मुगल दरबारों में प्रयुक्त फारसी के प्रभाव के फलस्वरूप रीतिकाव्य में अरबी-फारसी के शब्दों का निस्संकोच एवं पुष्कल

१. १।१० कवित्त रत्नाकर, (सेनापति) ।

२. छन्द सं० २२७, सुजान हित प्रबन्ध (घनानन्द) ।

रूप में प्रयोग किया गया। विशेषता यह रही कि इन कवियों ने विदेशी शब्दों को देशी सांचे में ढाल कर ही प्रयुक्त किया।

(१६) मुक्तक काव्य का निर्माण—इस युग में अधिकांशतः मुक्तक काव्य ही लिखे गये। मुक्तकों में अनेकानेक छन्दों का प्रयोग किया गया। यहाँ तक कि चित्र काव्य की भी रचना की गई।

(१७) प्रिय छन्द—रीतिकाल के कवियों के प्रिय छन्द तीन रहे—कवित्त सवैया और दोहा। वैसे गोला, त्रोटक, चौपाई, हरिगीतिका, छप्पय, पद, कुण्डलिया आदि छन्दों की भी छटा यत्र-तत्र एवं यथास्थान दिखाई देती है।

(१८) जीवन के सन्ध्या काल में भक्ति-भावना—रीतियुग के कवियों ने अन्तिम दिनों में भक्ति और वैराग्यपरक रचनाएँ लिखी। यह इस बात का द्योतक है कि श्रृंगार की अतिशयता उन्हें अपेक्षित तृप्ति और शान्ति प्रदान नहीं कर सकी थी।

रीतिकाल के कवियों का विभाजन—रीतिकालीन कवियों को प्रमुखतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) रीतिबद्ध कवि—जिनके रचित काव्य रीति-काल के लक्षणों से युक्त हैं।

पद्माकर और ग्वाल इसी कोटि में आते हैं। ये कवि अपने आपको कवि-शिक्षक समझते थे।

(ख) रीतिबद्ध कवि—इस वर्ग में वे कवि आते हैं, जिन्होंने लक्षणवद्ध रूप में तो शास्त्रीय चर्चा प्रस्तुत नहीं की, किन्तु काव्य-रचना करते समय उनका ध्यान लक्षण ग्रन्थों पर अवश्य था। इनके ग्रन्थ शास्त्रीय सिद्धान्त निरूपक भले ही न हों, पर इनके पद्य किसी-न-किसी काव्यांग के किसी-न-किसी रूप में लक्ष्य अवश्य थे। बिहारी और उनका काव्य इसी कोटि में आते हैं।

वर्ग संख्या (१) तथा वर्ग संख्या (२) में विशेष अन्तर नहीं है। अतः हम रीति-काल के कवियों को सामान्यतः दो वर्गों में विभक्त करते हैं—(१) शास्त्र कवि और (२) काव्य कवि। केशव, मतिराम तथा पद्माकर प्रथम वर्ग में तथा सेनापति, बिहारी, ग्वाल और घनानन्द द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

इसी प्रकार इस काल में निर्मित ग्रन्थों की भी दो कोटियाँ की जा सकती हैं—(१) लक्षण-लक्ष्यबद्ध और (२) लक्ष्यबद्ध। कुछ कवियों ने दोनों प्रकार के ग्रन्थ लिखे। अतः उनकी गणना उपर्युक्त दोनों वर्गों के अन्तर्गत की जानी चाहिए, जैसे मतिराम, देव और पद्माकर।

निष्कर्ष :

(१) रीतिकाल में लगभग सवासौ महत्त्वपूर्ण कवि हुए। इस काल में अगणित ग्रन्थों की रचना हुई और हिन्दी का विपुल काव्य-भण्डार तैयार किया गया। इस दृष्टि से यह हिन्दी का स्वर्ण-युग कहा जाना चाहिए।

(२) रीति-काल के महत्त्व का निरूपण करते हुए, आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, “इन रीति-ग्रन्थों के कर्त्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे।

उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः शृंगार-रस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अव्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण ग्रन्थों से चुनकर इकट्ठे करे तो भी उनकी इतनी संख्या न होगी।”

(३) इस काल में शृंगार और वीर इन दो रसों की कविता हुई। प्रधानता शृंगार की रही। अतः रस के विचार से इस काल को शृंगार काल भी कह सकते हैं। कई विद्वानों ने ऐसा कहा भी है।

(४) इस काल के कवियों का अुकाव नायिका भेद की ओर विशेष रहा। इससे शृंगार रस के अन्तर्गत बहुत सुन्दर मुक्तक रचना हिन्दी में हुई।

(५) रीति-ग्रन्थों की परम्परा द्वारा साहित्य का विकास रुद्ध हो गया और कवियों की दृष्टि बद्ध एवं परिमित सी हो गई। जीवन की चिरन्तन समस्याएँ, जगत् के विभिन्न रहस्य तथा अनेकरूपा प्रवृत्ति की उपेक्षा हो गई। साहित्य का क्षेत्र बहुत कुछ संकुचित हो गया।

(६) आचार्य शुक्ल ने इस काल की एक बहुत बड़ी कमी की ओर संकेत किया है। इतनी विपुल साहित्य रचना के इस काल में ब्रजभाषा का स्वरूप

व्यवस्थित हो जाना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। व्याकरण द्वारा न तो उसकी व्यवस्था हुई, न च्युति-संस्कृति दोष का निराकरण हुआ और न वाक्य-दोषों के पूर्ण रूप से निरूपण द्वारा भाषा में सफाई ही आई। शुक्लजी ने लिखा है, “यदि शब्दों के रूप स्थिर हो जाते और शुद्ध रूपों के प्रयोग पर जोर दिया जाता तो शब्दों को तोड़-मरोड़ कर विकृत करने का साहस कवियों को न होता। पर इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं हुई, जिससे भाषा में बहुत कुछ गड़बड़ी बनी रही। × × ×

रूपों के स्थिर न होने से यदि कोई विदेशी काव्य की ब्रजभाषा का अध्ययन करना चाहे तो उसे कितनी कठिनाई होगी।”

(६) अश्लील शृंगार-वर्णन के सम्बन्ध में शुक्लजी का मत दृष्टव्य है “इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रुचि थी, जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।”

: ५ :

सतसई परम्परा और बिहारी

सप्तशती की परम्परा—आर्यों के प्राचीन साहित्य में दो प्रकार की रचनाएँ विशेष रूप से मिलती हैं—(१) आध्यात्मिक अथवा ज्ञानकाण्ड सम्बन्धी तथा (२) कर्म-काण्ड-सम्बन्धी । प्रथम कोटि के अन्तर्गत उपनिषद्, दर्शन तथा बौद्ध और जैन धर्मों के ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं । द्वितीय वर्ग में ब्राह्मण ग्रन्थ, गृहसूत्रादि, प्राचीन स्मृतियाँ एवं पौराणिक ग्रन्थ आते हैं । इन रचनाओं का दृष्टिकोण धार्मिक था तथा वे प्रायः पंडित-वर्ग तक सीमित थी ।

विक्रम संवत् के आसपास एक तीसरे प्रकार के साहित्य का श्रीगणेश हुआ । इसमें ऐतिहासिकतापूर्ण सरस कवित्व का प्राधान्य था । जनकवि विरचित सरस कवित्वपूर्ण मुक्तकों और छोटे-छोटे पदों द्वारा जन साधारण का मनोरंजन ही इसका उद्देश्य था । आध्यात्मिकता और कर्मकांड से उसका कोई सम्बन्ध न था ।

लौकिक काव्य की ये रचनाएँ सर्वप्रथम जन-साधारण की भाषा प्राकृत में हुईं । इस 'प्राकृत' को वैयाकरणों ने 'महाराष्ट्र प्राकृत' कहा है । इन सरस रचनाओं का सर्वप्रथम ग्रन्थ 'गाथा सप्तशती' है । इसके रचना-काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु यह निर्विवाद है कि इसका संकलन विक्रम के प्रथम शतक में आन्ध्र राजघराने के सातवाहन के वंशज राजा हाल द्वारा किया गया था । संकलनकर्ता ने लिखा है कि उस समय एक करोड़ के लगभग गाथाएँ प्रचलित थीं । उनमें से सातसौ गाथाएँ इस संकलन में संगृहीत हैं । सम्भव है उक्त कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो, परन्तु इस प्रकार की प्रचलित गाथाओं का एक नरेश द्वारा संकलन किया जाना, उनके महत्त्व एवं उनकी लोकप्रियता का परिचायक है ।

जन-साधारण की भाषा 'प्राकृत' में ऐसी सरस एवं लोकप्रिय रचना को देखकर पंडितों का ध्यान भी उस ओर गया तथा संस्कृत में भी इस

प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की गईं। प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'बिहारी की वाग्विभूति' में लिखा है, "स्तोत्र और भक्ति के ग्रन्थों के नाम शतक, सप्तशती आदि होते ही थे, पर जब लोग शृंगार की मुक्तक-रचना करने लगे तो शुद्ध काव्य में भी शतक और सप्तशती नाम का ग्रहण होने लगा। प्राकृत में जब से हाल की 'गाथा सप्तशती' का संग्रह हुआ तब से शृंगार के वैसे ही रसपूर्ण मुक्तकों की रचना करने का और लोगों को भी हौसला होने लगा।"

संस्कृत में की गई इस प्रकार की काव्य-रचना का सर्वप्राचीन स्वरूप हमें अमरुक कवि की रचना 'अमरुक शतक' में दिखाई देता है। अमरुक का समय ६वीं शताब्दी से कुछ पूर्व ठहरता है। अमरुक की कविता मनोरम शृंगार में आकंठ भरी हुई है। इसमें प्रेम का सजीव चित्रण किया गया है। कामी और कामिनियों की विभिन्न अवस्थाओं से उत्पन्न मनोवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण करके मनोरम विवरण 'अमरुकशतक' की सबसे बड़ी विशेषता है। अमरुक के विषय में कहा जाता है कि इसके एक-एक छन्द पर सौ-सौ प्रबन्ध काव्य न्यौछावर हैं—“अमरुक कवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते।” ध्वन्यालोककार ने भी इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इसके पश्चात् गोवर्धनाचार्य की 'आर्यासप्तशती' प्राप्त होती है। इसका रचना-काल विक्रमी संवत् की १२वीं शती का अन्तिम चरण (११७३) माना जाता है। गोवर्धनाचार्य 'गीतगोविन्द' का रजयदेव के समकालीन थे। दोनों ही बंगदेश के अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित थे। आर्यासप्तशती में शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग—का सजीव निरूपण किया गया है। नायिकाओं की विविध प्रकार की चेष्टाओं के मार्मिक वर्णन इसकी विशेषता है।

इस प्रकार मुक्तक रचनाओं को सातसई के बन्धन में बाँधने की परम्परा सी चल पड़ी और यथासमय ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित होते रहे। यह परम्परा हिन्दी के कवियों द्वारा भी गृहीत हुई।

हिन्दी में सतसई परम्परा—यह नहीं कहा जा सकता है कि पुरानी हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ थे या नहीं। ब्रजभाषा में कई सतसइयाँ प्राप्त होती हैं। ये सतसइयाँ दो वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं। यथा—

(क) नीति, सुभाषित अथवा सूक्ति-सतसइयाँ—इनके अन्तर्गत रहीम सतसई, तुलसी सतसई तथा वृन्द सतसई आती हैं।

(ऊ) शृंगार सतसइयाँ—इस वर्ग में बिहारी-सतसई, मतिराम-सतसई, रसनिधि-सतसई, राम-सतसई और विक्रम-सतसई आती हैं ।

रसनिधि ने 'रतन हजारा' लिखा था । उसका संक्षिप्त संस्करण 'रसनिधि-सतसई' कहलाता है । एक धार्मिक ग्रन्थ 'दुर्गा सप्तशती' भी मिलता है । आधुनिक काल में वियोंगी हरि, दुलारेलाल, हरिऔध ने सतसइयाँ लिखी हैं ।

बिहारी, शृंगार-सतसई के प्रवर्तक—अतएव स्पष्ट है कि हिन्दी में शृंगार-सतसई की परम्परा का सूत्रपात करनेवाले बिहारीलाल ही हैं । इस तथ्य को प्रो० विश्वनाथप्रसाद ने इस प्रकार व्यक्त किया है—“बिहारी की सतसई के निर्मित हो जाने पर तो बहुतों ने नोंक-झोंक में सतसइयाँ लिख डालीं । 'विक्रम सतसई, शृंगार-सतसई, मतिराम-सतसई आदि कई सतसइयाँ रची गई ।”

डा० हरिवंशलाल शर्मा ने भी 'बिहारी और उनका साहित्य' के अन्तर्गत लिखा है “शृंगारिक सतसई की परम्परा हिन्दी में बिहारी से प्रारम्भ हुई, किन्तु शृंगारिक मुक्तक उनसे पहले भी रचे जाते थे ।” अस्तु ।

सतसइयों के सम्बन्ध में निम्नलिखित सात बातें दृष्टव्य हैं— (१) वे मुक्तक काव्य हैं । (२) इनकी रचना दोहा छन्द में हुई है । (३) इनमें छन्दों (दोहों) की संख्या सात सौ पर बल दिया गया है । (४) इनकी परम्परा प्राकृत से आरम्भ होती है । (५) इनमें शृंगारिता की प्रधानता है । (६) इनमें अनेक विषयों के समावेश की प्रवृत्ति पाई जाती है तथा (७) इनमें दृष्टिकोण प्रायः यथार्थवादी है ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'बिहारी सतसई में ये समस्त विशेषताएँ सहज रूप से उपलब्ध हैं ।

बिहारी का प्रेरणा स्रोत—बिहारी 'बिहारी-सतसई' की रचना में क्यों प्रवृत्त हुए? इसके उत्तर में प्रायः समस्त विद्वान राजा जयसिंह वाली घटना का उल्लेख करते हैं । आमेर नरेश राजा जयसिंह नवविवाहिता रानी के प्रेम में राज-काज भूल गये थे । बिहारी ने एक दोहा^१ लिखकर उनको सचेत किया और वहीं से सतसई का प्रणयन प्रारम्भ हुआ ।

१. नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकासु इहि काल ।

अली ! कली ही सों बंध्यौ, आगें कौन हवाल ॥

(बिहारी रत्नाकर ४८)

डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने 'हिन्दी काव्य मे शृंगार परम्परा और महा-कवि बिहारी' ग्रन्थ में उपर्युक्त घटना की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में सदेह का प्रश्न उठाया है। परन्तु विरोध में प्रमाण न मिलने के कारण वह भी इसी निष्कर्ष को प्राप्त हुए है कि, "उपर्युक्त इतिवृत्त सत्य हो या न हो, इतना निश्चित है कि सतसई का निर्माण महाराज जयसिंह के ही आश्रय में हुआ था, क्योंकि सतसई में उनसे सम्बन्धित सात दोहे आते हैं^१ तथा उन्होंने अन्य किसी नरेश का उल्लेख नहीं किया। इसके अतिरिक्त सतसई के अन्तिम दोहे में भी जयसिंह की आज्ञा से सतसई निर्माण में प्रवृत्त होने का प्रमाण मिलता है।"^२

एक बात यहाँ और उल्लेखनीय है। महाराजा ने उन्हें सरस दोहे बनाने की आज्ञा दी होगी, उनकी संख्या सात सौ ही हो—ऐसा उन्होंने कदाचित् ही कहा होगा। ऐसी स्थिति में नहम अनुमान कर सकते हैं कि सतसई लिखने की कल्पना पहले भी बिहारी के मन में रही होगी। उनके पितृक बलभद्र मिश्र द्वारा 'आर्यासप्तशती' की टीका लिखे जाने की बात प्रचलित है। अतः सम्भव है, उसीसे उनका सतसई के प्रति आकर्षण रहा हो।

पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव एवं बिहारी की मौलिकता—बिहारी बहुश्रुत विद्वान् थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था। उनकी काव्य-रचना पर पूर्ववर्ती प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश के कवियों का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। विशेषता यह है कि उनकी मौलिकता सदैव अधुण्ण बनी रही है। पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित होकर भी बिहारी किस प्रकार मौलिक रहे हैं तथा इन्होंने परवर्ती कवियों को किस सीमा तक प्रभावित किया है—इस तथ्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेवालों में प्रमुख हैं—पं० पद्मसिंह शर्मा (बिहारी की सतसई), प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (बिहारी की वाग्विभूति), डा० रामसागर त्रिपाठी (बिहारी मीमांसा), डा० हरवंशलाल शर्मा (बिहारी और उनका साहित्य) तथा डा० गणपतिचन्द्र गुप्त (हिन्दी काव्य मे शृंगार-परम्परा और महाकवि बिहारी)।

'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "बिहारी के

१. दोहा सं० ८०, १५६, १६७, २२६, ७१०, ७११, ७१२ (बिहारी रत्नाकर)

२. हुकुम पाइ जयसाहि कौ हरि राधिका प्रसाद।

कही बिहारी सतसई भरी अनेक सबाद।

बहुत-से दोहे 'गाथा सप्तशती' और 'आर्या सप्तशती' की छाया लेकर बने हैं।
 × × × लेकिन बिहारी ने गृहीत भावों को अपनी प्रतिभा के बल से किस प्रकार स्वतन्त्र और कहीं-कहीं अधिक सुन्दर रूप दे दिया है।" एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। बिहारी के प्रसिद्ध दोहे 'नहिं परागु नहिं मधु' का भाव गाथा सप्तशती और आर्या सप्तशती दोनों ही में उपलब्ध है। यथा—

जाव ण कोस विकास पावइ ईसीस मालईकलिआ ।

मअरन्दपाणलोहितु भमर तावच्चिअ मलेसि ।

(गाथा सप्तशती ५-४४)

'आर्या सप्तशती' के छन्द में भी इस भाव को देखिये—

पिब मधुप वकुल कलिकां दूरे रसना ग्रमात्र माधाय ।

अधर विलेप समप्ये मधुनि मुधा वदनमर्ययसि ॥

कही-कही बिहारी के कथन में पूर्ववर्ती कवि की उक्ति की अपेक्षा अधिक चमत्कार दिखाई देता है। अमरकशतक का निम्नलिखित छन्द काव्यशास्त्र में संयोग शृंगार के उदाहरण के रूप में प्रायः उद्धृत किया जाता है—

शून्यं वासगुहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चित्क्षणात्,

निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युमुखम् ।

विश्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामाबलोवय गण्डस्थलीम्,

लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता वाला चिरं चुम्बिता ।

इस कथन का आशय लेकर बिहारी ने निम्नलिखित दोहा लिखा—

मैं मिसहा सोयो समुझि मुंह चूम्यो ढिग जाइ ।

हँस्यो खिसानी गर गह्यो, रही गरै लपटाइ ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि बिहारी ने अमरक की चार पंक्तियों का भाव केवल दो पंक्तियों में बहुत ही सफलतापूर्वक भर दिया है। साथ ही बिहारी के कथन में मनोविज्ञान का निर्वाह है तथा क्रियाव्यापार का सजीव चित्रण है।

डा० रामसागर त्रिपाठी ने हाल, गोवर्धन तथा अमरक के अतिरिक्त संस्कृत के अन्य कवियों—वाल्मीकि, कालीदास, माघ, श्रीहर्ष, आदिक के साथ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके यह स्पष्ट किया है कि बिहारी के कथन कही अधिक सजीव, चमत्कारपूर्ण एवं मौलिक हैं।

इसी प्रकार बिहारी के ऊपर विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, केशव, सुन्दरदास, सेनापति, रसखानि आदिक हिन्दी के कवियों की छाप दिखाई देती है। परन्तु बात वही है। इन्होंने छायामात्र को ही अपनाया। प्रतिभा के द्वारा इन्होंने सर्वत्र नवीनता उत्पन्न कर दी है। हो सकता है, कहीं-कहीं भाव-निर्वाह में न्यूनता आ गई हो, अधिकतर अपने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा नवीन चमत्कार उत्पन्न करने में इन्हें सफलता प्राप्त हुई है।

परवर्ती कवियों पर प्रभाव—पूर्ववर्ती ग्रन्थों का बिहारी पर प्रभाव और बिहारी की मौलिकता का विवेचन करते हुए प० पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी के अर्थापहरण पर विचार किया है। उनके मतानुसार आनन्दवर्द्धनाचार्य के निम्नलिखित कथन के अनुसार पुरानी बातों में वैचित्र्य में नवीनता लाना ही कवियों की कारीगरी है—

दृष्टपूर्वा अपि ह्यार्यात्यः काव्ये रसपरिग्रहान् ।

सर्वे नवा इवाभान्ति माधु मास इव द्रुमाः ॥

कवि वस्तुतः काव्य-नाटिका को विकसित करनेवाला वसन्त ही तो है। वसन्त उसी पुराने वृक्ष को नया करके दिखा देता है।

शब्दार्थ में कुछ निराली नूतनता पैदा करके जो प्राचीन भाव को चमत्कृत बना देता है वही महाकवि है।

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्

स्फुरितभि दमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते ।

अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तातृक्

सुकविरूपनिबध्नन् निन्द्यतां नोपयाति ।

(ध्वन्यालोक ४।१६)

रामसहाय, विक्रमसिंह, मनिराम आदिक परवर्ती कवियों ने कहीं-कहीं बिहारी के भाव को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है, परन्तु वह बात न आ सकी। यथा—

पाई महावरु देन को नाइनि बैठी आइ ।

फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मोड़त जाइ ॥३५॥

बिहारी के इस दोहे के भाव को लेकर रामसहाय और विक्रमसिंह ने क्रमशः निम्नलिखित दोहे लिखे, परन्तु वह बात न ला सके—

छैल छबोली की छटा लहि महावरी संग ।

जानि परै नाइन लगै जबहि निचोरन अंग ।

×

×

×

सहज अरुनि एड़ीनि की लाली लखै विसेखि ।

जावक दीवै जाके रही, नाइन पाइन पेखि ।

डा० हर्षलाल शर्मा ने फारसी के कतिपय कवियों के साथ भी बिहारी की तुलना प्रस्तुत की है। इनका भी निष्कर्ष यही है कि, “इन उक्तियों में से किसीमें भी बिहारी के दोहे जैसी स्पष्टता, प्रामादिकता, अर्थ-गाम्भीर्य एवं प्रभावशीलता नहीं है।”

डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने संस्कृत के अन्य कवियों की रचना और उक्ति साम्यवाले बिहारी के दोहों की एक तालिका प्रस्तुत की है और अन्त में लिखा है, “बिहारी की विशेषता यह है कि वह अन्य कवियों के भावों को आधार बनाकर भी दोहे की रचना इस प्रकार करते हैं कि वे सर्वथा मौलिक से प्रतीत होते हैं।” हमारे विचार से बिहारी की सतसई की सफलता का यह बहुत बड़ा रहस्य है। आगे चल कर डा० गुप्त ने ठीक ही लिखा है, कि “सतसईकार बिहारी ने पूर्ववर्ती सतसईकारों का केवल अनुकरण ही नहीं किया अपितु उनमें नये तत्त्वों का समावेश भी किया है।”

इस सम्बन्ध में प्रो० विश्वनाथप्रसाद द्वारा उपलब्ध निष्कर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। “बहुत से छन्दों को कुछ संस्कार एवं सुधार के साथ ही इन्होंने ग्रहण किया है। × × × कहने का ढंग भी उन्हें औरों से भिन्न करता है, उनकी अवेक्षण शक्ति की तीव्रता और उसके निरूपण की निपुणता ही उन्हें औरों से अलग रख देती है। × × × बिहारी की सतसई की रचना के बाद तो कितने ही लोग उनकी होड़ करने के लिए आगे बढ़े। पर बिहारी जैसी उनमें न तो मार्मिकता थी और न उतनी विस्तृत दृष्टि ही; इसलिए वे लोग बिहारी की होड़ नहीं कर सके। बिहारी का प्रभाव केवल सतसई की-सी मुक्तक-रचना पर ही नहीं पड़ा, बल्कि और कितने ही मुक्तक-रचनाकार बिहारी से प्रभावित हुए।”

बिहारी रीति कवि अथवा रीतिबद्ध काव्य कवि ?

रीतिकाल के कवियों को प्रमुखतः दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) स्वच्छन्द कवि अथवा रीतिमुक्त कवि—वे कवि जिन्होंने साधारण काव्य के रूप में रचनाएँ लिखी और शृंगार विषयक विविध विषयों की चर्चा का समावेश उनकी रचनाओं में यथास्थान अपने आप आ गया। सेनापति और घनानंद इसी कोटि के कवि हैं।

(२) रीतिकवि—वे कवि जिन्होंने अपने ग्रन्थ में काव्य के विविध अंगों और उपागों को स्थान दिया। इनकी दो कोटियाँ हैं—

(क) रीति ग्रन्थकार कवि—वे कवि जिन्होंने शास्त्रीय ढंग पर लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत किये। लक्षण ग्रन्थ प्रस्तुत करना, इनका उद्देश्य था और वे आचार्य के रूप में काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे। केशव, मतिराम, देव, पद्माकर आदि इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं। ये कवि अपने आपको कवि-शिक्षक कहते और समझते थे।

(ख) रीतिबद्ध कवि—इस वर्ग में वे कवि आते हैं, जिन्होंने लक्षणबद्ध रूप में तो शास्त्रीय चर्चा नहीं की, परन्तु काव्य-रचना करते समय उनका ध्यान लक्षण ग्रन्थों पर अवश्य था। इनके ग्रन्थ काव्यांग-निरूपक भले ही न हों, पर इनके पद्य किसी-न-किसी काव्यांग के किसी-न-किसी रूप में लक्ष्य अवश्य थे। बिहारी इसी कोटि में आते हैं।

वर्ग संख्या (१) और वर्ग संख्या (२) में विशेष अन्तर नहीं है। अतः रीतिकालीन कवियों के मुख्यतः दो ही वर्ग किये जा सकते हैं—(१) लक्षण-लक्ष्यबद्ध रीति कवि तथा (२) रीतिबद्ध काव्यकवि। राजशेखर ने काव्य-कवियों के विषय में लिखा है कि, “जो रीतिकालीन कवि बँधी परिपाटी में आस्था रखने पर भी लक्षण-ग्रन्थों के प्रणयन में लीन हो जायें वरन् स्वतन्त्र रूप से

लक्ष्यग्रन्थों के द्वारा जिन्होंने अपनी कविप्रतिभा का परिचय दिया और अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के स्फुरण द्वारा रसमर्मज्ञ कवि का अभिधान प्राप्त किया। इन कवियों में कविगौरव की अभिलाषा प्रधान थी। इनको पाठ्यग्रन्थ तैयार करने में कोई रुचि नहीं थी। ये कवि कवित्व के लोभ में चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ बाँधते समय यह ध्यान नहीं रखते थे कि 'लक्षण' का निर्वाह हो रहा है या नहीं। रसाभिव्यक्ति के लिए स्वानुभूति के आधार पर मौलिक काव्य रचना इनकी बहुत बड़ी विशेषता है। यही कारण है कि आचार्य कवियों की अपेक्षा इनकी वैयक्तिकता अधिक मुखर है। इनमें मौलिकता भी अधिक है। सारांश यह है कि "आचार्य कवियों ने संस्कृत के काव्य शास्त्र को आधार मानकर हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया, वहाँ रीतिबद्ध काव्य कवियों ने संस्कृत के काव्य ग्रन्थों को केवल पृष्ठभूमि में रखा।"

इस प्रकार रीतिकार आचार्य कवि और रीतिबद्ध काव्य कवियों के मध्य विभाजक रेखा स्पष्ट है। बिहारी ने कोई रीतिग्रन्थ या लक्षण-ग्रन्थ नहीं लिखा। उनकी सतसई लक्ष्यकाव्य की कोटि में ही आती है, परन्तु वह लक्ष्यग्रन्थ अथवा रीतिबद्ध काव्यग्रन्थ ऐसा है, जिसको देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी रचना बहुत कुछ लक्षणों को दृष्टि में रख कर की गई थी। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने बिहारी-सतसई के दोहों को समग्ररूप से नायक-नायिका-भेद के पोषक बताया है तथा कतिपय विद्वानों ने उसमें काव्यशास्त्र के अलंकार, रस, ध्वनि, आदि भेदों का अनुसंधान भी सतसई में किया है और उसे रीतिग्रन्थ ठहराने का प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में विद्वानों के मत उद्धृत करने के पूर्व हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि इन आलोचक विद्वानों ने कदाचित् विभाजन की उक्त सूक्ष्मता की ओर ध्यान नहीं दिया और बाह्यार्थ निरूपण मात्र को 'रीति' का लक्षण मान कर बिहारी को केशव, मतिराम और देव की कोटि में रख दिया। बिहारी यदि 'रीतिग्रन्थ' लिखना चाहते, तो वह ऐसा बहुत ही सरलता के साथ कर सकते थे। लक्षणों का बहिष्कार करके वह अपने आपको लक्ष्य तक ही सीमित क्यों रखते? ध्वनि, नायिका-भेद, रस, ध्वनि आदि के वर्णन तो रीतिबद्ध और रीतियुक्त सभी प्रकार के ग्रन्थों में उपलब्ध हो सकते हैं। घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा आदि की रचनाओं में भी ये तत्त्व मिल जाते हैं। तब क्या इन कवियों को भी रीति-ग्रन्थकारों में रखा जाना चाहिए? अस्तु।

बिहारी ने कोई रीतिग्रन्थ या लक्षणग्रन्थ नहीं लिखा। उनकी सतसई लक्ष्य ग्रन्थ की कोटि में ही आती है। किन्तु यह लक्ष्य ग्रन्थ ऐसा है, जिसको देखने से पता चलता है कि ग्रन्थ-रचना बहुत कुछ लक्षणों को दृष्टिगत रखकर की गई है।

बिहारी पंडितराज जगन्नाथ के समकालीन भी थे और उनका उनसे व्यक्तिगत परिचय भी था। अतः वह पंडितराज से अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे। डा० रामसागर त्रिपाठी ने 'बिहारी मीमांसा' के अन्तर्गत यह बहुत ही युक्तियुक्त निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि, "रीतिबद्ध कविता की दिशा में इन्हें पंडितराज से प्रेरणा अवश्य मिली होगी। यही कारण है कि हमें बिहारी के प्रत्येक दोहे में किसी-न-किसी लक्षण की छाप अवश्य दिखलाई देती है।"

बिहारी को रीतिग्रन्थकार माननेवाले कतिपय विद्वानों के मत पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिये जाते हैं—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में बिहारी को रीतिकाल के अन्य कवियों में रखकर रीति-ग्रन्थकार कवियों में स्थान दिया है—“बिहारी ने यद्यपि लक्षण-ग्रन्थ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है, पर 'नखशिख', 'नायिका-भेद', 'षट्कृत' के अन्तर्गत उनके सब श्रृंगारी दोहे आ जाते हैं और कई टीकाकारों ने इन दोहों को इस प्रकार के साहित्यिक क्रम के साथ रखा भी है। जैसा कि कहा जा चुका है, दोहों को बनाते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसीलिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियों में न रखकर, उक्त-काल के प्रतिनिधि कवियों में रखा है।"

डा० हरवंशलाल शर्मा ने भी इसी दृष्टिकोण को स्वीकार किया है, "बिहारी ने कोई रीतिग्रन्थ नहीं लिखा किन्तु रीतिग्रन्थों में प्रतिपादित प्रायः सभी विषयों के उदाहरण उनके काव्य में मिल जाते हैं। × × × इस विषय में उनकी (बिहारी की) जानकारी रीतिकाल के अनेक आचार्यों की जानकारी से निम्न कोटि की किसी भी अंश में नहीं थी।" बिहारी के नायिका-भेद-कथन का विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत करने के पश्चात् डा० शर्मा ने लिखा है कि, "निःसंदेह उनका नायिका-भेद अधिक व्यापक है, जिसमें ऐसे उदाहरण भी प्राप्त हैं, जो आचार्यों ने लक्षित नहीं किये। रीति-परम्परा का पूरा-पूरा आवेग उन पर था और एतद्विषयक ग्रन्थों की उन्होंने गहरी छान-बीन की थी। यदि उन्होंने कोई रीति-ग्रन्थ लिखा होता तो वह हिन्दी काव्य-शास्त्र के यशस्वी आचार्यों

में भी अग्रगण्य होते, यह उनके काव्य में प्रवाहित काव्य शास्त्रीय ज्ञान से स्पष्ट है। रीति-ग्रन्थों में नख-शिख-वर्णन, अलंकार, गुण आदि का विवेचन मिलता है। बिहारी की सतसई में उन सबके उदाहरण भी विद्यमान हैं। ”

इसी प्रकार अलंकारों का विवेचन करने के पश्चात् डा० साहब ने लिखा है कि, “एक सफल रीतिकार की भाँति इन्होंने सभी प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत कर दिये।”

बिहारी के काव्य-शास्त्रीय-दृष्टिकोण की सविस्तर समीक्षा के अन्तर्गत ‘बिहारी मीमांसा’ में डा० रामसागर त्रिपाठी ने लिखा है कि, “दोहों में काव्य-शास्त्रीय कतिपय संकेत और लक्ष्य-परीक्षा—इन दोनों दृष्टिकोणों के विचार से × × × बिहारी का झुकाव कुछ रस की ओर विशेष ज्ञात होता है। ध्वनि काव्य के उपभेदों में रस-ध्वनि ही मुख्य है।”

बिहारी के निम्नलिखित दोहे से यही ध्वनित होता है कि उनके मतानुसार रसास्वादन करना ही काव्य का उद्देश्य है—

तन्त्रीनाद कवित्त रस, सरस, राग, रति-रंग ।

अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ॥६४॥

ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए भी बिहारी ने अपनी सतसई को “भरी अनेक सवाद” (७१३) कहा है।

परन्तु फिर भी बिहारी को शुद्ध रसवादी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इनकी सूक्तियाँ और अन्योक्तियाँ रस-ध्वनि में सन्निविष्ट नहीं की जा सकती हैं।

डा० रामसागर त्रिपाठी ने लिखा है, “ये संस्कृत साहित्य के उस काव्यशास्त्र का अनुकरण करना चाहते थे, जो विकास-क्रम में ध्वनि-सम्प्रदाय में पर्यवसित हुआ। हमें बिहारी में जहाँ वस्तु, अलंकार और रस तीनों प्रकार की ध्वनियों के दर्शन होते हैं, वहाँ असंलक्ष्य-क्रम-व्यंग्य, संलक्ष्य-क्रम-व्यंग्य, विवक्षित-वाच्य, अविवक्षित-वाच्य इत्यादि सभी प्रकार के ध्वनि-भेदों के उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। × × × बिहारी के समस्त काव्य-उपादान ध्वनि-सिद्धान्त के द्वारा ही सम्भव हैं। अतएव बिहारी ध्वनि-सम्प्रदायवादी सिद्ध होते हैं।”

ठीक ही है बिहारी ने वचनों की अपेक्षा संकेतों से प्रतीयमान अर्थ को विशेष महत्त्व दिया है—

झूठे जानि न संग्रहे मनु मुहुँ निकसे बैन ।

याही ते मानहुँ किये बातनु को विधि नैन ॥३४५॥

सम्भवतः बिहारी के मतानुसार महृदय-संवेद्य प्रतीयमान अर्थ ही प्रधानी-भूत होकर काव्य की आत्मा बन जाता है—

दुरत न कुच विच कंचुकी चुपरी सारी सेत ।

कवि आंकनु के अरथ लौँ प्रगटि दिखाई देत ॥१८८॥

डा० नगेन्द्र ने भी बिहारी को ध्वनिवादी ही माना है। रीतिकाल की भूमिका (पूर्वाह्न) के अन्तर्गत उन्होंने लिखा है, “बिहारी ने यद्यपि लक्षण ग्रन्थों की रचना नहीं की, परन्तु उनके काव्य की प्रवृत्ति सर्वथा ध्वनिवाद के ही अनुकूल थी। उनके दोहा के काव्य-गुण का विश्लेषण करने पर यह संदेह नहीं रह जाता कि वह रसवाद के शुद्ध मानसिक प्राकृतिक आनन्द की अपेक्षा ध्वनिवाद के बौद्धिक आनन्द को ही अधिक महत्त्व देते थे।”

रीतिकाल की शृंगारिकता के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए भी डा० नगेन्द्र ने बिहारी को रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि के रूप में रसिक ही माना है, प्रेमी नहीं।

बिहारी के ध्वनि-काव्य का परिचय प्रस्तुत करने के पश्चात् डा० रामसागर त्रिपाठी ने छह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किये हैं, जिनका सारांश यह है कि— बिहारी ने ध्वनि-सिद्धान्त के आधार पर काव्य-रचना प्रस्तुत की तथा उनके ऊपर पंडितराज जगन्नाथ का विशेष प्रभाव पड़ा। “बिहारी ने निरूढ़ा लक्षणा के लक्षक शब्दों को भी व्यंजना के रूप में प्रस्तुत किया है। यह एक नया मार्ग है, जिसका निरूपण हमें काव्यप्रकाशकार या पण्डितराज में प्राप्त नहीं होता।”

बिहारी के रीतिकार होने के लिए उससे अधिक और क्या प्रमाण चाहिए ?

बिहारी के रीति-बद्ध कवि होने पर एक अन्य दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। बाह्यार्थ निरूपण ‘रीति’ का एक प्रमुख लक्षण है। बिहारी की रचना में अन्तर्वृत्ति-निरूपण की अपेक्षा बाह्यार्थ निरूपण की प्रधानता है। विरह-वर्णन की दृष्टि से भी बिहारी की रचना डभी वर्ग के अन्तर्गत आती है, क्योंकि बिहारी के विरह-वर्णन में आन्तरिक पुकार कम है, विरह ताप की चर्चा अधिक है—

करके मोड़ें कुसुम लौ गई बिरह कुम्हिलाइ ।
सबा समीपनि सखिनहूँ, नोठि पिछानी जाइ ॥५१६॥

× × ×
अजौं न आए सहज रंग, बिरह-दूबरे गात ।
अबहीं कहा चलाईयति ललन चलन की बात ॥२०३॥

× × × इत्यादि

बिहारी ने एक ओर कवित्त रस के साथ तन्त्री नाद तथा रति रंग को जीवन की सार्थकता माना और साथ ही जवानी की गलतियों को किसी सीमा तक क्षम्य भी घोषित कर दिया—

✓ इक भीजें, चहलें परें बूढ़े बहै हजार ।
किते न औगुन जग करे नय बय चढ़ती बार ॥४६१॥

बिहारी ने तत्कालीन वातावरण के प्रभाव में राधा-कृष्ण की केलि का वर्णन इन शब्दों में किया है—

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग ।
जिहि ब्रज केलि-निकुज-मग पग-पग होतु प्रयाग ॥२०१॥

संक्षेप में चमत्कार-प्रदर्शन एवं विभाव-पक्ष का प्राधान्य—ये दो रीति-बद्धता की प्रमुख विशेषताएँ मानी जा सकती हैं। बिहारी के काव्य में दोनों ही विशेषताएँ उपलब्ध हैं। नायिका-भेद-कथन, नखशिख-निरूपण, ऋतु वर्णन, अलंकार-निरूपण आदि विभाव-पक्ष के ही अंग हैं। बिहारी ने इन अंगों तथा उपांगों को ही ध्यान में रखकर काव्य-रचना की और उनकी कविता विभाव-पक्ष प्रधान हो गई।

बिहारी रीतिबद्ध तथा घनानन्द रीति मुक्त कवि—रीतिबद्धता की दृष्टि से बिहारी के साथ घनानन्द का नाम प्रायः लिया जाता है और यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि बिहारी की तुलना में घनानन्द रीतिबद्ध कवि हैं अथवा रीतिमुक्त ? उत्तर स्पष्ट है—

“बिहारी ने यद्यपि लक्षण ग्रन्थ के रूप में अपनी सतसई की रचना भी की, तथापि उनके समस्त दोहे नखशिख, नायिका-भेद, षट्ऋतु के अन्तर्गत आ जाते हैं तथा कतिपय टीकाकारों ने उनके दोहों को इस क्रम से रखा भी है। जैसा कहा जा चुका है कि दोहों को बनाते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था।” (आचार्य शुक्ल)

घनानन्द के बारे में शुक्लजी का कथन है, “घनानन्द ने न तो बिहारी की

तरह विरह ताप को बाहरी मान से नापा है, न बाहरी उछल-कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की × × × कारण उनकी 'मौनमहि पुकार' है।"

रीतिकाल में ग्रन्थ-रचना की परिपाटियों के अध्ययन के फलस्वरूप हमारे सम्मुख ये निष्कर्ष उपस्थित होते हैं—

- (१) बिहारी और घनानन्द दोनों ही रीतियुग की प्रवृत्तियों से प्रभावित हैं। दोनों की काव्य-रचना पर उस युग की प्रवृत्तियों की छाप है।
- (२) बिहारी और घनानन्द दोनों में एक ने भी विधिवत् लक्षण-ग्रन्थ की रचना नहीं की, परन्तु उनकी शृंगार परक रचनाएँ नायिकाभेद, नखशिख आदि के अन्तर्गत आ जाती हैं।
- (३) बिहारी की रचना में बाह्यार्थ-निरूपण अधिक है और घनानन्द में अन्तर्वृत्ति का प्राधान्य है। बिहारी में विभाव-पक्ष का प्राधान्य है और घनानन्द में भावपक्ष प्रबल है।

यहाँ एक बात विशेष रूप से निवेदन करनी है। दोनों की काव्य-रचना में इतना अन्तर नहीं है कि उनको 'युक्त' और 'मुक्त' के दो अलग-अलग कटहरों में बन्द किया जा सके। दोनों कवियों में जो अन्तर है, वह वास्तव में विरह-वर्णन को लेकर ही है। बिहारी के विरह-वर्णन में विरह-ताप की चर्चा अधिक है, घनानन्द में एक सच्चे प्रेमी की आन्तरिक पुकार है। बिहारी का विरह-वर्णन प्रायः ऊहात्मक

अरे परे न करे हियौ खरे जरें पर जाइ ।

लावति घोर गुलाब सौं, मिलैमिलैघनसार ॥५२६॥

इसके विपरीत घनानन्द का वियोग-वर्णन प्रशान्त एवं गम्भीर है। उसमें बाह्यार्थ-निरूपण कम, अन्तर्वृत्ति की ओर ध्यान अधिक है, अर्थात् कला-पक्ष की अपेक्षा उसमें भाव-पक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया गया है—

भये कागद-नाव उपाव सबै घन आनन्द नेह-नदी गहरै ।

बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी ! बिरहा-बिष की लहरै ।

(घनानन्द कवित्त)

रूप-वर्णन के क्षेत्र में भी दोनों कवियों का अन्तर स्पष्ट है। बिहारी का अधिकांश रूप-वर्णन नखशिख परिपाटी का है, घनानन्द ने रूप-छटा के प्रभाव का अधिक वर्णन किया है—

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजति काननि ह्वै ।

अंग-अंग तरंग उठै दुति की, परि है मनौ रूप अबै घर चवै ॥

(घनानन्द कवित्त २)

घनानन्द ने रूप और प्रेम का एक साथ वर्णन किया है। उनके लक्षण बताने की बजाय उनकी प्रतिक्रिया का वर्णन करके भावपक्ष का प्राधान्य प्रकट किया है। बिहारी ने जहाँ 'रूप रिझावनि हारि वे ये नैना रिझवारि' लिखा है, वहाँ घनानन्द लिखते हैं कि—

रावरे रूप की रीति अनुप, नयो-नयो लागत ज्यौं-ज्यौं निहारिये ।

रोकी रहै न वहै घनानन्द बावरी रीझि के हाथन हारिये ।

(घनानन्द कवित्त १५)

बिहारी ने लोक-रुचि के प्रवाह में "किने न औगुन जग करै नय-वय चढ़ती बार" लिखकर स्पष्ट कह दिया कि—

तजि, तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग ।

जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज मग, पग-पग होत-प्रयाग ॥२०१॥

परन्तु इसके विपरीत घनानन्द ने उस सुधे सनेह के मारग का निरूपण किया "जहँ नैकु सयानप बाँक नही" तथा "जहाँ सुधे चल झिझकै कपटी ।"

घनानन्द की कविता का आनन्द लेने के लिए हृदय और आँखों में नेह की पीर चाहिए। बिहारी की कविता का रस-पान करने के लिए हृदय और बुद्धि का संतुलन अपेक्षित है। स्पष्ट है कि हम घनानन्द को रीतिवद्ध कवियों की श्रेणी में नहीं रख सकते हैं।

वाह्यार्थ-निरूपण के आधार पर बिहारी रीतिवद्धता के अधिक निकट हैं और घनानन्द उससे 'मुक्त' है।

निष्कर्ष :

बिहारी ने न तो कोई लक्षण ग्रन्थ ही लिखा और न संस्कृत के ग्रन्थ विशेष को आधार मान कर काव्यांग निरूपण ही किया। उन्होंने रमानुभूति को प्रमुखता देते हुए मार्मिक और चमत्कारिक उक्तियाँ लिखी। इन उक्तियों में इनकी मौलिकता, स्वतन्त्र-उद्भावना तथा वैयक्तिकता की छाप के दर्शन होते हैं। इन्होंने जीवन और जगत् से अनुकूल सामग्री का चयन करके रस-सिक्त कविता लिखी तथा भावपक्ष और कलापक्ष को समान रूप से अपनाया।

यदि यह लक्षण के घेरे में बंधकर काव्य-रचना करने में प्रवृत्त होते, तो निश्चय ही इनकी कविता में यह रसधारा अलभ्य होती। रीति-ग्रन्थकार आचार्य कवियों में पिष्टपेषण अथवा चर्चितचर्वण अत्यधिक मिलता है। बिहारी की सतसई में इसका अभाव ही समझना चाहिए, और यदि वह कहीं है भी, तो अत्यन्त न्यून मात्रा में। बिहारी सुनिश्चित रूप में कवित्व या कविगौरव के अभिलाषी थे, कविशिक्षक या आचार्य होने की ओर वह कहीं भी प्रयत्नशील नहीं दिखाई देते हैं। अतएव बिहारी को रीतिबद्ध काव्यकवि कहना ही अधिक युक्तिसंगत है। केशवदास, मतिराम आदि की भाँति उन्होंने रीति के बन्धनों को कभी स्वीकार नहीं किया। यदि 'रीतिबद्ध' अथवा 'रीतिमुक्त'—केवल इन्हीं दो शब्दों का प्रयोग अभीष्ट हो, तो हमारा मत स्पष्ट है—बिहारी केशव इत्यादि की भाँति रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा घनानन्द की भाँति रीतिमुक्त कवियों के अधिक निकट हैं।

बिहारी का शास्त्रीय दृष्टिकोण

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य इतिहासकारों ने भी बिहारी की गणना प्रमुख रीतिकवियों में की है। कारण स्पष्ट है। उनकी कविता में रीति की आत्मा आद्योपान्त अनुस्यूत है। बिहारी ने स्वतन्त्र रूप में काव्यशास्त्र सम्बन्धी लक्षणग्रन्थ नहीं लिखा, उनकी सतसई लक्ष्यग्रन्थ है। “बिहारी ने रीतिकाव्यों का विधिवत् परिशीलन करके सतसई का निर्माण किया था, अतः लक्ष्यग्रन्थ होने पर भी कवि के अन्तर्मन में लक्षणों के अनुरूप दोहे रचने की भावना सतत् बनी रही। × × × लक्षणों के अनुरूप लक्ष्य प्रस्तुत करना ही सतसई का ध्येय था।”^१ सतसई के दोहों में उपलब्ध संकेतों के आधार पर हम बिहारी के काव्यशास्त्र विषयक दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करते हैं।

अलंकार के सम्बन्ध में उनका मत मम्मट आदि रसवादियों के समान था। मम्मट के समय में अलंकारों का काव्य में वही स्थान रह गया था, जो शरीर के भूषण कटक, कुण्डल आदि का स्थान है। अलंकारों के सम्बन्ध में बिहारी का दृष्टिकोण बहुत कुछ इसी प्रकार का है—

करत मलिन आछी छबिहि हरत जु सहज विकास ।

अंगराग अंगनु लगै, ज्यों आरसी उसास ।

(दोहा सं० ३३४, बिहारी रत्नाकर)

लादे हुए प्रसाधन के समान अलंकार काव्य के स्वाभाविक सौन्दर्य के लिए अहितकर सिद्ध होते हैं। अलंकार वहीं तक उपयोगी हैं, जहाँ तक वे अर्थ-सौष्ठव या अर्थगौरव में सहायक हों तथा प्रतीयमान अर्थ (रसध्वनि) में विशेषता सम्पादन करें। यथा—

१. पृ० सं० ५१७, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण।

पहिरि न भूषण कनक के, कहि आवत इहि हेत ।

दर्पण कंसे मोरचे, देह दिखाई देत ॥

(दोहा सं० ३३५, बिहारी रत्नाकर)

×

×

×

जीवित परम समान दुति, कनक कनक से गात ।

भूषण कर कर कर लगत, परसि पिछाने जात ॥

इस प्रकार बिहारी का दृष्टिकोण अलंकार सम्प्रदाय से मेल नहीं खाता है ।

बिहारी की सतसई के कुछ दोहो में 'रस' शब्द का प्रयोग हुआ है । यथा—

हुकुम पाइ जयसाहि कौ, हरि-राधिका-प्रसाद ।

करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ।

(दोहा सं० ७१३, बिहारी रत्नाकर)

×

×

×

तन्त्री-नाद, कवित्त, रस, सरस, राग, रति-रंग ।

अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ।

(दोहा सं० ६४, बिहारी रत्नाकर)

इसके आधार पर कुछ लोग उन्हें इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखने का प्रयत्न करते हैं । इस सम्बन्ध में डा० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है, “यदि रसध्वनि को काव्य की आत्मा मान कर बिहारी के काव्य में रसध्वनि का संधान ही मुख्य माना जाय, तो ध्वनि के माध्यम से बिहारी रस सम्प्रदाय का स्पर्श अवश्य करते हैं । परन्तु रस उनका दृष्ट साध्य नहीं है । यदि उनके लक्ष्य (दोहों) की परीक्षा की जाय तो यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जायगा कि रसध्वनि के उदाहरणों की भरमार होने पर भी वह रस सम्प्रदाय के पोषक न होकर ध्वनि सम्प्रदाय के ही अनुगामी हैं । रसध्वनि, अलंकारध्वनि और वस्तु-ध्वनि को ग्रहण करके बिहारी ने सांकेतिक अर्थ को ही प्रधानता दी है । अतः उनकी अभिरुचि ध्वनि सम्प्रदाय के प्रति ही है ।”^१

१. पृ० सं० ५१८-१९, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण ।

डा० नगेन्द्र अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रीति काव्य की भूमिका' में यह स्थापना कर ही चुके हैं कि बिहारी ध्वनिमत के अनुयायी थे। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने अविवक्षित वाच्यध्वनि^१, के समस्त भेदों के उदाहरण बिहारी की सतसई में खोजकर यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है, "असंलक्ष्य-क्रम-व्यंग्य या रसध्वनि की दृष्टि से भी बिहारीस तसई की सफलता असंदिग्ध है। ध्वनि के जितने प्रौढ़, परिष्कृत और प्रांजल उदाहरण बिहारी के काव्य में हैं, हिन्दी के किसी अन्य कवि में नहीं हैं। यथार्थ में बिहारी का काव्य मूलतः ध्वनि काव्य ही है।^२ बिहारी के दोहों में जबतक ध्वन्यात्मक आशय समझ में नहीं आता है, तबतक रस की प्रतीति नहीं होती है। यथा—

हरखि न बोली लखि ललनु, निरसि अमिलु संग साथ ।

आखिन ही में हँसि धरयो, सीस हिये धरि हाथ ॥

(दोहा सं० १४६, बिहारी रत्नाकर)

बिहारी-सतसई के कई टीकाकारों ने बिहारी सतसई को नायिका-भेद का ग्रन्थ माना है। उन्होंने सतसई के दोहों में नायिकाओं के विभिन्न वर्गों को स्थिर किया है और इस प्रकार उसको एक लक्षणपरक ग्रन्थ सिद्ध करने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि 'बिहारी-सतसई' यदि शास्त्र-सम्मत शैली पर लक्षण ग्रन्थ नहीं है, तो न हो, परन्तु वह लक्षणपरक ग्रन्थ अवश्य है। हमारे विचार से यह मत भी मान्य नहीं हो सकता है। 'बिहारी-सतसई' में निस्संदेह अनेक नायिकाओं के लक्षण हैं। इसमें भी संदेह नहीं है कि काव्य रचना करते समय बिहारी की दृष्टि नायिका-भेद-कथन की परम्परा पर अवश्य रही थी, परन्तु फिर भी बिहारी-सतसई को नायिका-भेद का ग्रन्थ नहीं माना जा सकता था। यही मत डा० विजेन्द्र स्नातक ने स्थिर किया है।^३

१. जब व्यंजना वृत्ति से प्रतीत होने वाले अर्थ में सौन्दर्य का पर्यवसान हो, तो उसे अविवक्षित वाच्य ध्वनि के नाम से अभिहित किया जाता है।
२. पृ० सं० ५२०, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण।
३. देखें पृ० सं ५२०, वही।

“उनमें रस की पूरी सामग्री नहीं है, उन्हें भावदशा तक ही मानना चाहिए।” बिहारी ने कुछ दोहे हास्य-रस के भी लिखे हैं, परन्तु इनका हास्य उच्च कोटि का नहीं माना जा सकता है। यथा—

बहु धनु लै, अहसानु कै, पारौ देत सराहि ।

वैद बधू, हँसि भेद सौं, रही नाह-मुँह चाहि ॥४७६॥

इस दोहे में हास्य रस के चारों अवयव ढूँढ़े जा सकते हैं, फिर भी यह हास्य उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता है।

कहीं-कहीं इसी प्रकार का हास्य शृंगार का संचारी भाव बन कर आया है—

परतिय-दोष पुरान सुनि, लखि मुलकी मुखदानि ।

कसु करि राखी मिश्र हूँ, मुँह-आई मुसकानि ॥२६४॥

संचारी भावों की संख्या सामान्यतः ३३ मानी गई है। बिहारी के दोहों में अधिकांश संचारी भाव मिल जाते हैं। हर्ष संचारी का एक उदाहरण देखिए—

झीने पट में झुलमुली, झलकति ओप अपार ।

मुरतरु की मनु सिधु मै, लसत सपल्लव डार ॥१६॥

भावोदय, भावशान्ति, भाव-शबलता तथा भावसंधि के उदाहरण भी बिहारी के दोहों में मिल जाते हैं। प्रो० विश्वनाथप्रसाद ने भी लिखा है कि, “बिहारी की कविता में भावसंधि और भाव-शबलता के बहुत उदाहरण मिलेंगे और वे बहुत स्पष्ट मिलेंगे।” भावोदय आदि के इन उदाहरणों में भी रस ही मानना पड़ेगा। यथा—

करे चाह सौं चुटकि कै खरें उड़ौहैं मैन ।

लाज नवाएँ तरफत, करत खूँद-सी नैन ॥५४२॥

यह दोहा भावसंधि का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ चाह (उत्सुकता) और लाज (श्रीङ्ग) इन दो भावों की संधि है। इसके ऊपर टीका करते हुए प्रो० मिश्र ने लिखा है कि, “यह उदाहरण इतना साफ है कि रीतिकारों के ग्रन्थ में भी ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं।”

निम्नलिखित दोहा भाव-शबलता का सुन्दर उदाहरण है—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात ।

भरे भौन में करत हैं, नैननु हीं सब बात ॥३२॥

यहाँ एक साथ कई भाव उत्पन्न हुए हैं। इस कारण 'भाव-शबलता' है। विशेषता यह है कि नायक-नायिका दोनों ही पक्षों में भाव शबलता परिलक्षित हो रही है।

भावशांति और भावोदय एक स्थान पर ही रहते हैं। दोनों में भेद यह किया जाता है कि जहाँ जिसमें चमत्कार हो वहाँ उसी का उदाहरण माना जाना चाहिए। जहाँ भाव के उदय में अधिक चमत्कार हो वहाँ 'भावोदय' होता है और जहाँ भाव की शांति में अधिक चमत्कार हो, वहाँ भाव शांति होती है। 'चमत्कार-उत्पत्ति' के इस लक्षण के आधार पर निम्नलिखित दोहा 'भावोदय' का उदाहरण है—

बिथुक्यौ-जावकु सौति-यग निरखि हँसी गहि गाँसु ।

सजल हँसौहीं लखि लियो आधी हँसी उसांसु ॥५०७॥

यहाँ 'भावोदय' है। अमूया भाव की शांति है तथा विषाद का उदय है। किन्तु विषाद के उदय में अधिक चमत्कार है।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य शुक्ल ने लिखा है, 'भाव-व्यंजना या रस-व्यंजना के अतिरिक्त बिहारी ने वस्तु-व्यंजना का सहारा भी बहुत लिया है—विशेषतः शोभा या कांति, सुकुमारता, विरहताप, विरह की क्षीणता आदि के वर्णन में। कहीं-कहीं इनकी वस्तु-व्यंजना औचित्य की सीमा का उल्लंघन करके खेलवाड़ के रूप में हो गई है। यथा—

छाले परिवे के डरन सकै न हाथ छुवाइ ।

क्षिप्तकति हियें गुलाब कंझवावावति पाइ ॥४८३॥

इस सम्बन्ध में प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्रा ने बहुत ही संतुलित एवं समीचीन मत व्यक्त किया है, "बिहारी में वस्तु-व्यंजना अधिकतर रूढ़ि के सहारा पर ही की गई है और जहाँ उसमें ऊहा अधिक है वहाँ वह खेलवाड़ के रूप में ही है। पर भाव-व्यंजना के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। भाव की व्यंजना अपनी प्रकृत पद्धति पर चलती है और उसमें रस-मग्न करने की क्षमता अधिक है।"

सारांश

बिहारी के भाव-पक्ष के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य दृष्टव्य हैं—

- (१) बिहारी के काव्य का आत्मा शृंगार-रस है। वैसे अन्य भावों के भी वर्णन लिखे हैं।
- (२) शृंगार-रस वर्णन के लिये संयोग तथा विप्रलम्भ दोनों ही पक्ष बिहारी ने स्वीकार किये हैं।
- (३) संयोग शृंगार के चित्रण में बिहारी ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं द्वारा उसके द्वारा उपलब्ध आनन्द की चरम स्थिति पर पहुँचा दिया है। संयोग शृंगार वर्णन कहीं-कहीं मर्यादा का अतिक्रमण भी कर गया है।^१
- (४) वियोग-वर्णन में ऊहात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। ऐसे स्थलों पर अतिशयोक्ति के प्रेम में बिहारी औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर गये हैं। इस शैली में प्रेम का स्वाभाविक रूप प्रकट नहीं हो पाया है।
- (५) शृंगार-रस की व्यंजना ध्वनि के माध्यम से हुई है।
- (६) बिहारी ने काव्य की रचना करते समय रीति परम्परा की रूढ़ियों पर ध्यान रखा था। अतः परम्परा स्वीकृत मान्यता (गूढ़ाशय) को अंतर्भूत में रखते हुए ही प्रायः प्रत्येक दोहे की रचना की गई है। दोहों के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए परम्परा-ज्ञान आवश्यक है—अन्यथा दोहे का अर्थ अवगत होने में कठिनाई होना स्वाभाविक है। निम्नलिखित दोहे में धृष्ट पड़ोसिन के सन्देश, तथा नायक तक पहुँचाने वाली दूती का मान-वर्णन तभी स्पष्ट होता है, जब पाठक को रीति की रूढ़ि का ज्ञान हो —
ढोठि पड़ोसिन ईठ ह्वै; कहै जु गहे समान ।
सबै संदेसे कहि कह्यो, मुसकाहट में मान ।

(दोहा सं० ३८३ बिहारी रत्नाकर)

- (७) बिहारी ने 'निर्वेद' और 'शम' का वर्णन किया है। इनके भक्ति-सम्बन्धी दोहे सामान्य भक्ति-वर्णन के रूप में ही हैं। इनका भक्ति-वर्णन किसी दार्शनिक मतवाद या साम्प्रदायिक आधार पर समझना चाहिये।

१. प्रीतम हृग मीचत प्रिया, पानिपरस सुख पाय ।

जानि पिछानि अजान लौं, नेक न होत लखाय ॥

(दोहा सं० ४२२, बिहारी रत्नाकर)

शृङ्गार-रस-निरूपण

आचार्यों ने शृङ्गार रस को 'रसरार' एवं 'आदिरस' माना है ।

शृङ्गार-रस के भेद—भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि, “लोक में जो कुछ शुचि, मेध्य तथा दर्शनीय है, उस सबका अनुमान शृङ्गार में हो जाता है । शृङ्गार हृद्य तथा उज्ज्वल-वेपात्मक होता है ।”

‘शृङ्गार’ शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है मन्मथोद्भेद के आगमन में कारण-भूत । इस प्रकार परस्पर अनुरक्त स्त्री-पुरुष दोनों के कामोद्दीपन की प्राप्ति शृङ्गार शब्द के द्वारा अभिहित की जाती है ।^१ आचार्यों ने रसों के वर्णों तथा देवताओं का भी वर्णन किया है । किन्तु उनकी आवश्यकता केवल नाट्य के रंग-पूजन में ही होती है । मुक्तक काव्य के अन्तर्गत उनका कोई उपयोग नहीं । वैसे शृङ्गार का वर्ण ‘श्याम’ माना गया है और इसके देवता विष्णु है । शृङ्गार रस का स्थायी भाव रति है । इस रस के दो पक्ष होते हैं—सुख और दुःख । इनके वर्णन को क्रमशः संयोग या संभोग शृङ्गार तथा वियोग या विप्रलम्भ शृङ्गार कहते हैं ।

प्रायः संयोग के पूर्व ही प्रेम हो जाता है । इसे पूर्वराग कहते हैं । इस प्रकार शृङ्गार-रस के तीन भेद ठहरते हैं—(१) अयोग, नियोग या पूर्वराग

१. साहित्य दर्पणकार के अनुसार ‘काम के उद्भेद, अंकुरित होने को शृङ्ग कहते हैं । उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस ‘शृङ्गार’ कहलाता है । रसमंजरीकार सेठ कन्हैयालाल पोद्दार के अनुसार ‘शृङ्गार’ यौगिक शब्द है, ‘शृङ्ग’ और ‘आर’ इसके दो अंश हैं । ‘शृङ्ग’ का अर्थ कामोद्रेक, काम की वृद्धि है । ‘आर’ शब्द ‘ऋ’ धातु से बना है । ‘ऋ’ का अर्थ ‘गमन’ है । गमन या गति का अर्थ यहाँ ‘प्राप्ति’ लिया जाता है । अतः शृङ्गार शब्द का अर्थ है “कामवृद्धि की प्राप्ति ।”

(२) संयोग शृङ्गार तथा (३) विप्रलम्भ शृङ्गार । बिहारी के दोहों में तीनों पक्षों से सम्बन्धित सफल वर्णन प्राप्त होते हैं ।

संयोग शृङ्गार वर्णन—पारस्परिक प्रेम के वशीभूत होकर जब नायक-नायिका एक-दूसरे के दर्शन, मिलन, स्पर्श और आलाप आदि में संलग्न होते हैं उस अवस्था को संयोग शृङ्गार कहते हैं । काव्य प्रकाशकार ने इसके अन्तर्गत अवलोकन, आलिंगन, सर्वांग चुम्बन, फूल बटोरना, जलक्रीड़ा आदि का वर्णन किया है । साहित्य दर्पणकार के अनुसार संभोग शृङ्गार का लक्षण इस प्रकार है, “एक-दूसरे के प्रेम में पगे नायक और नायिका जहाँ परस्पर दर्शन, स्पर्श आदि करते हैं, वह संभोग शृङ्गार कहलाता है । चुम्बन, आलिंगन आदिक इसके अनन्त भेदों की गिनती नहीं हो सकती । अतः संभोग शृङ्गार नामक एक ही भेद माना है । इसके अन्तर्गत एकान्तवास, वन, उपवन, सखी, सदन, ऋतु-वर्णन, स्नानादि का भी उल्लेख होता है । बिहारी में इस वर्णन को देखिए—

दोऊ चोर मिहीचनी खेलु न खेलि अघात । ✓

दुरत हिये लपटाय के छुअत हिये लपटात ॥५३०॥

बिहारी के संयोग-पक्ष के विवेचन के निष्कर्ष रूप में प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि, “बिहारी की कविता में सब प्रकार की रचनाएँ पाई जाती है । प्रेम के विस्तार का वर्णन भी मिलता है और रूढ़ि के अनुकूल संकुचित रचना भी ।”

संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत बिहारी ने नायक-नायिका के दर्श-स्पर्श केलि-क्रीड़ा, रति, रति-चिह्न आदि समस्त अवयवों का कथन किया है—

नाक चढ़ सीबी कहैं जितैं छबीली हैल ।

फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौं कंकरीली गैल ॥६०६॥

मुग्धाओं की चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं का आनन्द लेने के लिए जान-बूझ कर खिलवाड़ या गलती करना नायकों का स्वभाव होता है । इस दोहे में इसी स्वाभाविक प्रक्रिया का सफल निरूपण किया गया है ।

प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा अनुराग उत्पन्न होने का यह उदाहरण कितना सजीव है—

उन हरकीं हंसि कै इतैं, इन सौंपी मुसकाय ।

नैन मिले मन मिलि गये, दोउ मिलावत गाय ॥११८॥

निम्नलिखित दोहे में सावयवपूर्ण संभोग शृङ्गार का वर्णन दृष्टव्य है—

मैं मिसिहा सोयौ समुझि, मुंह चूम्यो ढिग जाय ।

हँस्यो, खिस्यानी, गल गह्यो, रही गरे लिपटाय ॥६४२॥

यहाँ रीति भाव स्पष्टतः व्यंजित है । लिपटना, गल गह्यो, गरे लिपटाय, मुंह चूम्यो, हँस्यो, खिस्यानी आदि कायिक अनुभाव हैं । रोमांच, कम्प, स्वेद आदि सात्त्विक अनुभाव व्यंजित हैं । 'दृष्टि' तथा 'चपलता' संचारी भाव भी व्यंजित हैं ।

रति-वर्णन-सम्बन्धी कई दोहे बिहारी ने लिखे हैं । निम्नलिखित दोहों में क्रमशः सुखारम्भ, रति-क्रिया, तथा सुरतान्त के वर्णन हैं—

भौंहनि त्रासति मुख नटति, आँखिन सों लपटाति ।

ऐचि छुड़ावत कर इंची, आगे आवत जात ॥६८२॥

जदपि नाहि नाहीं नहीं, बदन लगी जक जाति ।

तदपि भौंह हाँसी भरिनु हाँसीयै ठहराति ॥३२४॥

रंगी सुरत रंग पिय हिये, लगी जगो सब राति ।

पेंड पेंड ठठकि कं, ऐंड भरी ऐंडाति ॥१८३॥

रात्रि की क्रीड़ा से श्रमित दंपति के प्रातः काल जागने का दृश्य-वर्णन भी देखिए—

नोठि नोठि उठि बैठि हूँ प्यो प्यारी परभात ।

दोऊ नौद भरे खरं, गरे लागि गिरजात ॥६४२॥

बिहारी ने दो-तीन स्थलों पर विपरीत रति का वर्णन भी किया है ।^१ बिहारी ने परकीया के साथ सोने का भी वर्णन किया है ।^२

बिहारी ने अनेक दोहों में संभोग की विभिन्न चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं, हिंडोरा, जल-बिहार, वन-बिहार प्रेम-क्रीड़ा, आँख-मिचौली, मद्यपान आदि के वर्णन किए हैं ।^३ ऐसे स्थलों पर ही उनके वर्णन प्रायः अश्लील हो गए हैं, किसी कामी के द्वारा बिहारी ने सफल 'रति' की प्रशंसा इस प्रकार कराई है—

१. देखें दोहा सं० २६, १३०, ३१६ ।

२. दोहा सं० ५७१ ।

३. देखें दोहा सं० ६६, १५२, १७६, २००, २०४, २२३, २५६, ६२१, ६२०, ६३२, ६३३, ६३४, ६६८ आदि ।

चमक, तमक, हाँसी, ससक, मसक झपट लपटानि ।

ए जिहि रति, सो रति मुकति, और मुकति अति हानि ॥७६॥

विप्रलम्भ या वियोग-शृङ्गार का वर्णन—जब अनुराग के उत्कट होने पर भी प्रिय संयोग का अभाव रहता है उसे अवस्था को विप्रलम्भ अथवा वियोग-शृङ्गार कहते हैं। साहित्य दर्पणकार के मतानुसार, “जहाँ अनुराग तो अति उत्कृष्ट है, परन्तु प्रिय समागम नहीं होता, उसे विप्रलम्भ कहते हैं। विप्रलम्भ-शृङ्गार के चार भेद होते हैं—(१) पूर्वराग, (२) मान, (३) प्रवास, और (४) करुण।

मान के दो भेद होते हैं—(१) प्रणयमान और (२) ईर्ष्यामान। ईर्ष्यामान स्त्रियों में ही होता है तथा प्रणयमान कभी-कभी प्रेम की वृद्धि के लिए अकारण भी किया जाता है।

ईर्ष्यामान के तीन भेद होते हैं—(१) लघुमान, (२) मध्यमान और (३) गुरुमान। ये भेद मान-निवृत्ति के अनुसार हैं।

प्रवास के तीन कारण होते हैं—(i) कार्यवश, (ii) शापवश, और (iii) भयवश,

कार्यवश प्रवास समय सम्बन्धानुसार तीन प्रकार का होता है—

(१) भूत-प्रवास, (२) भविष्य-प्रवास, और (३) वर्तमान प्रवास।

जब नायक-नायिका को किसी कारणवश परस्पर मिलन की आशा नहीं रहती है, वहाँ करुण वियोग मानना चाहिए। करुण वियोग जीवन के साथ सम्बन्धित मानना चाहिए। नायक अथवा नायिका में किसी एक की भी मृत्यु हो जाने पर यह समाप्त हो जाता है। मृत्यु होने के साथ ही स्थायी भाव ‘रति’ न रहकर ‘शोक’ हो जाता है और वह शुद्ध करुण-रस में परिणत हो जाता है।

वियोगजनित दस दशाएँ मानी जाती हैं। हिन्दी के कवियों ने इनका अच्छा निरूपण किया है। ये हैं—(१) अभिलाषा, (२) चिन्ता, (३) स्मरण, (४) गुणकथन, (५) उद्वेग, (६) प्रलाप, (७) उन्माद, (८) जड़ता, (९) व्याधि और (१०) मरण।

विप्रलम्भ शृङ्गार के भेदोपभेदों के सम्बन्ध में यहाँ एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना अप्रासंगिक नहीं होगा। भरतमुनि ने वियोग शृङ्गार के उपभेद नहीं किये और बहुत समय तक वियोग-शृङ्गार भी संयोग-शृङ्गार की भाँति एक ही प्रकार का माना जाता रहा। पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार भी वियोग शृङ्गार के उपभेदों में परस्पर विशेष विच्छिन्ति-

वैचित्र्य नहीं होता। मनोदशा प्रायः समान बनी रहती है। विप्रलम्भ की उपाधियों का सर्वप्रथम उल्लेख भोजराज ने 'शृंगार प्रकाश' के अन्तर्गत किया और तब से विप्रलम्भ के उपभेद करने की परम्परा-सी चल पड़ी। डा० रामसागर त्रिपाठी ने ठीक ही लिखा है कि, "विप्रलम्भ के उपभेदों में अधिक अन्तर भले ही न हो, किन्तु मनोदशा में कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है।"

विप्रलम्भ-शृंगार में वियोगजन्य दुःख का वर्णन किया जाता है। वस्तुतः अनुराग की तीव्रता का मापदण्ड वियोग ही है। साहित्य दर्पणकार के मतानुसार बिना वियोग के शृङ्गार परिपुष्ट नहीं होता, कपामित वस्त्रादि पर ही अच्छा रंग चढ़ता है। महाकवि सूरदास ने भी विरहिणी व्रजांगनाओं के मुख से उद्धव के सम्मुख इसी प्रकार की बात कहलाई है—

ऊधौ, विरहौ प्रेम करै ।

ज्यों बिनु पुट पट गहे न रंगहि, पुट गहि रसहि परै ।

जो आवों घट दहत अनल तनु तौ पुनि अमिय करै ॥

जायसी के शब्दों में—

विरह अगनि तन मन जला, लाग रहा ततजीव ।

कै वा जानै विरहिनी, कै जिन भेंटा पीव ॥

पारलौकिक दृष्टि से दादू का यह कथन अक्षरशः सत्य है—

विरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव ।

जीव जगावै सुरत को, पंच पुकारै पीव ॥

फलत :—

विरह अगनि जरि कुन्दन होई । निरमल तन पावें पै सोई ।

(उस्मान)

सच ही है प्रखर सूर्य की किरणों से तप्त पथिक ही वृक्ष की शीतल छाया के महत्त्व का अनुभव करता है। व्यापकता एवं प्रभाव की दृष्टि से विप्रलम्भ-शृङ्गार निश्चय ही शृङ्गार-रस का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अंग है।

मिलन से पूर्व, मिलन के समय (प्रणय एवं ईर्ष्या के कारण) तथा मिलन के पश्चात्, प्रत्येक अवस्था एवं दशा में विरह-शृङ्गार का हेतु होता है, यहाँ तक कि सम्भोग समय भी "रति" के पुष्टि हेतु प्रणयमान का अवलम्बन किया जाता है। अतः विप्रलम्भ-शृङ्गार की व्यापकता एवं महत्ता स्वयं सिद्ध है।

बिहारी ने विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत वर्णित प्रायः समस्त दशाओं एवं अवस्थाओं का वर्णन किया है। यथा—

(क) पूर्व राग

हरि छवि जल जब तें परें तब तें छिनु बिछुरें न।

भरत ढरत बूझत तरत रहत घटी लौं नैन ॥३०७॥

यहाँ दर्शनजन्य पूर्वराम है। इसी प्रकार श्रवणजन्य पूर्वराम का उदाहरण देखिए—

मकराकृति गोपाल कें सोहत कुण्डल कान।

धर्यौ मनौ हियधर समर ड्योढ़ी लसत निसान ॥१०३॥

नायक पक्ष में पूर्वराम का उदाहरण दृष्टव्य है—

कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।

कहूँ मुरली, कहूँ पीत पट। कहूँ मुकुट बनमाल ॥१५४॥

(ख) मान

बिहारी ने प्रणयमान और ईर्ष्यामान दोनों का ही वर्णन किया है—

दोऊ चाह भरे कछु चाहत कह्यौ कहैं न।

नहिं जाचकु सुनि सूम लौं बाहर निकसत बैन ॥५४५॥

यहाँ नायिक-नायिका की परस्पर रूठने की प्रवृत्ति होने के कारण स्पष्टतः प्रणयमान है।

जब प्रियतम के अपराध के कारण रोष होता है, उसे ईर्ष्यामान कहते हैं—

वाही दिन ते ना मिट्यो मानु कलह को मूलु।

भलें पधारे पाहुने ह्वै गुडहर को फूल ॥५६५॥

(ग) प्रवास

बिहारी ने विप्रलम्भ-शृङ्गार के अन्तर्गत 'प्रवास' का सर्वाधिक वर्णन किया है। इन वर्णनों के अन्तर्गत प्रवत्सत्पतिका, प्रवत्स्यपतिका, प्रोषितपतिका तथा आगतपतिका नायिकायें आती हैं। यथा—

बिलखी कौं है चरवनु तिय लखि गवनु बराइ।

पिय गहबरि आएँ गरें राखी गरें लगाइ ॥१६६॥

यह प्रवत्स्यपतिका का वर्णन है। अब आगतपतिका नायिका की दशा भी देख लीजिए—

मृगनैनी दृग की फरक, उर उछाह तन फूल ।

बिनही प्रिय, आगम उमंगि, पलटन लगी दुकूल ॥२२२॥

विरह की १० दशाओं का भी वर्णन बिहारी ने बहुत ही सफलतापूर्वक किया है।^१ नमनलिखित दोहों में क्रमशः व्याधि एवं उन्माद दशाओं के वर्णन हैं—

करके मीड़े कुसुम लौं गई विरह कुम्हलाइ ।

सदा समीपिनि सखिनहूँ नीठि पिछानी जाइ ॥२१६॥

स्पष्ट है कि यह वर्णन ऊहात्मक हो गया है। अविवेक उन्माद-दशा का सर्वोपरि लक्षण है—

बहके सब जियकी कहत, ठौर कुठौर लखें न ।

छिन औरें, छिन और से, ए छबि छाके नैन ॥२१६॥

मरण के वर्णन से रसांतर होने की आशंका बनी रहती है। इस कारण कविगण प्रायः इसका वर्णन नहीं करते हैं। परन्तु बिहारी ने इसका वर्णन कोशल के साथ कर दिया है—

कहा कहौं वाकी दसा हरि प्राननु के ईस ।

विरह ज्वाल जरिबो लखें, मरिबो भई असोस ॥२१०॥

विरह-वर्णन करते समय बिहारी ने कहीं स्वाभाविकता का अवलम्बन किया है और कहीं अत्युक्ति के द्वारा ऊहात्मक वर्णन लिख डाले हैं।

निम्नलिखित दोहा में विप्रलब्धा नायिका की उत्कंठा तथा संताप का स्वाभाविक वर्णन है—

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन ।

रति पाली आली अनत, आए बनमाली न ॥२१५॥

दूर की कौड़ी लाने में अथवा अत्युक्तिपूर्ण विरह-वर्णन में बिहारी की उक्तियाँ कहीं-कहीं हास्यास्पद हो गई हैं^२—

१. इसके लिए देखें बिहारी भीमांसा (डा० रामसागर त्रिपाठी) तथा लेखक का ग्रन्थ 'रीतिकालीन कविता एवं शृङ्गार-रस का विवेचन ।'

२. देखें दोहा सं० १४६, २०३, २६२, २६६, २७८, २८३, ३१७, ३२८, आदि ।

मुनत पथिक मुंह माह निसि चलति जुबै उहि गाम ।

बिनु बूझैं बिनु हो कहैं, जियति बेचारी बाम ॥२८५॥

प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के कथनानुसार “बिहारी का विरह-वर्णन अधिकतर इसी रूप का है। × × × पर बिहारी ने विरह की व्यंजना में मध्यमार्ग का अवलम्बन किया है। इसमें बाहरी चमत्कार का अतिरेक तो है पर वह भारतीय परम्परा के मेल में ही रखा हुआ है। नायिका हवा के झूले पर झूलती हुई तो कही गई,^१ पर बिस्तर झाड़ने की जरूरत तक वे नहीं गए।”

विरहोपचार-वर्णन—विरह की वेदना के वर्णन के अन्तर्गत कपूर, चन्दन, आदिक शोतल उपचारों की चर्चा करने का रिवाज उन दिनों चल पड़ा था। कवि-कर्म को पूरा करते हुए बिहारी ने भी इस परम्परा का अनुगमन किया है—

अरै परै न करे हियौ खरै जरै यह जार ॥

लावति घोर गुलाब सौं, मलै मिलै घनसार ॥५२६॥

बिहारी के विरह-वर्णन के सम्बन्ध में डा० हरवंशलाल शर्मा (बिहारी और उनका साहित्य) के ये निष्कर्ष सर्वथा युक्तियुक्त हैं—“बिहारी ने प्रवास विप्रलम्भ का ही अधिक वर्णन किया है। × × × इनके विरह-वर्णन में उतनी गम्भीरता नहीं है जितनी मूर आदि भक्त कवियों के वर्णन में। × × × विरहाग्नि की विषमता का ऐसा चमत्कारक वर्णन भी बिहारी ने किया है जो सुखचिपूर्ण उक्ति-वैचित्र्य में पर्यवसित है और चमत्कारपूर्ण होता हुआ भी सहृदय संवेद्य है।^२ × × × बिहारी का विरह-वर्णन अधिकतर ऊहात्मक है। × × × समस्त उक्तियों में बिहारी की मौलिकता दृष्टव्य है। × × × परम्परा का पल्ला छोड़ कर और तमाशे से दृष्टि हटा कर जब बिहारी अपनी सामान्य भावभूमि पर स्थित रह कर नायिका की विरह-दशा का वर्णन करते हैं तब उनकी उक्तियाँ उनके निर्धारित स्टैण्डर्ड से नीचे रह ही नहीं पाती।

बिहारी और घनानन्द का विरह-वर्णन—बिहारी के विरह-वर्णन के साथ घनानन्द के विरह-वर्णन की तुलना का प्रश्न प्रायः और स्वभावतया

१. देखें दोहा सं० ३१७।

२. देखें दोहा सं० ३६, ४८।

उत्पन्न होता है। दोनों युग की प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर भी विरह के क्षेत्र में पृथक् मार्गों का अवलम्बन करते हैं। इनके विरह-वर्णन में विभेद स्थापित करते हुए पं० रामचन्द्र शुक्ल ने “हिन्दी सहित्य का इतिहास” के अन्तर्गत लिखा है कि, “घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह-ताप को बाहरी मान से नापा है, न बाहरी उछल-कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की—× × × कारण उनकी ‘मौन मधिपुकार’ है।”

शुक्लजी ने यह भी स्पष्ट लिखा है कि इनकी कविता यद्यपि ‘भक्तों की कोटि’ में नहीं आती है तथापि कविता इनकी भावप्रधान है।

संयोग-शृङ्गार की दृष्टि से तथा फारसी प्रभाव की दृष्टि से दोनों कवियों के दृष्टिकोण में बहुत कम अन्तर दिखाई देता है। परन्तु विरह-वर्णन का अन्तर दोनों कवियों को पृथक् श्रेणियों में ले ही जाता है। बिहारी के विरह-वर्णन ऊहात्मक है। उनमें हृदयस्थ भावों की व्यंजना कम है। चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक बलवती है। शुक्लजी ने इसी को उछल-कूद कहा है—

सीरे जतननु सिसिर-रितु सहि बिरहिनि तनु ताप ।

बसिबे कौ ग्रीष्म-दिननु पर्यौ पगोसिनि पाप ॥१६६॥

तथा

मुनत पथिक मुंह माह निसि चलत लुबं उहिं गाम ।

बिनु बूझै बिन ही कहैं, जियति बिचारी बाम ॥२८५॥

स्पष्ट है कि बिहारी ने विरह के ताप की ओर अधिक ध्यान दिया है, विरह की वेदना की ओर कम। ऐसे विरह-वर्णनों में विरही के चित्त का दुःख प्रकट नहीं होता है। उसकी दशा मलेरिया बुखार से पीड़ित उस रोगी जैसी हो जाती है जिसके ऊपर ठण्डे पानी की गद्दी या बर्फ की थैली रखने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई हो। इसके विपरीत घनानन्द के विरह-वर्णन में अन्तर्वृत्ति की ओर मन की व्यथा की ओर अधिक ध्यान दिया गया है, उस में बाह्यार्थ-निरूपण की अपेक्षा अन्तर्वृत्ति निरूपण पर बल दिया गया है। यथा—

अँखिया दुःखयानि कुबानि परीं, न कबहूँ लगें, कौन घरी सुलगी ।

मति दौरि थकी, न लहै ठिक ठौर, अमोही के मोह मिठास-ठगी ।

(घनानन्द कवित्त, १०)

बिहारी ने जहाँ यह लिखा है कि, “कहिए सब मेरी हियो तेर हिय की बात”, वहाँ घनानन्द ने लिखा है कि—

घनआनन्द जीवनदायक हौ, कबौं मेरियौ पीर हिये परसौ ।

कबहूँ वा बिसासी सुजान के आंगन मो अँसुवान को लै बरसौ ॥

वस्तुस्थिति यह है कि घनानन्द में हमको प्रेमदशा की गम्भीर अनुभूति का दर्शन होता है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि, “प्रेम-दशा की व्यंजना ही इनका अपना क्षेत्र है। प्रेम की गूढ़ अंतर्दशा का उद्घाटन जैसा इनमें है, वैसा हिन्दी के अन्य शृङ्गारी कवि में नहीं। इस दशा का पहला स्वरूप है हृदय या प्रेम का, आधिपत्य और बुद्धि का अधीन पद, जैसा कि घनानन्द ने कहा है—

रोझ सुजान सची पटरानी, बची सुधि बापुरी ह्वै करि दासी ।

घनानन्द ने प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास विरोधाभासों द्वारा दिया है—

जतन तुझे हैं सब जाकी झर आगें, अब,

कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की ।

जब तें निहारे घनआनन्द सुजान प्यारे,

तब ते अनोखी आगि लागि रही चाह की ।

(घनानन्द कवित्त, १८)

बिहारी ने भी “ज्यों-ज्यों बूढ़ें स्याम रंग त्यों त्यों उज्ज्वल होय”, कह कर विरोधाभास द्वारा प्रेम की विचित्र-रीति का निरूपण किया है। प्रेम किया नहीं जाता, प्रेम हो जाता है—

मो गति बूझ परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तें न्यारे ।

(घनानन्द कवित्त, २७)

घनानन्द ने बिहारी के “देखें बनें न देखते बिनु देखें अकुलाय” वाले प्रेम हिंडोरे के आनन्द का वर्णन बड़े ही अनूठे ढंग पर किया है—

मोहन अनूप रूप सुन्दर सुजान जू को,

ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की ।

× × ×

देखें अनदेखें नहीं अटक्यौ अनन्दघन ।

ऐसी गति कहौ कहा चुम्बक औ लौह की ।

(घनानन्द कवित्त, ६१)

वियोग में प्रेमपात्र के अभाव में समस्त शीतल पदार्थ दाहकारक लगना प्रेमियों के लिए स्वाभाविक है। गोपाल के बिना कुंज बैरिनि लगती हैं और पिपा के बिना काली रात नागिन के समान भयावह प्रतीत होने लगती है। प्रीतम के मुखचंद बिना घनानन्द के अंग-प्रत्यंग में विष व्याप्त हो जाता है और ठीक ही है, जब अमृत का स्रोत नहीं, तब विष तो भगवान ने दिया। मुखचंद्र के अभाव में विष की व्याप्ति की घनानन्द की मौलिक एवं स्वाभाविक उक्ति है—

घन-आनंद प्यारे मुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है ।

सुखमै मुखचंद बिना निरखें नख तें सिख लौं विष-पागनि है ।

(घनानन्द, कवित्त ६४)

चपल वृत्ति का परित्याग करके धीर एवं शान्त प्रेम के रूप में पर्यवसान होना प्रेम की चरम परिणति है। गोपियों का कृष्ण के प्रति और तुलसी का राम के प्रति प्रेम ऐसा ही था। घनानन्द का मुजान के प्रति प्रेम भी इसी कोटि का है। यथा—

घनआनंद जीवन-प्राण मुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू ।

नित नोके रह्यौ तुन्हें चाड़ कहा, पै असोस हमारियै लीजियै जू ॥

(घनानन्द कवित्त, ६८)

यही है प्रेम की अन्तर्गति का निरूपण और यही है प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा का उद्घाटन। इनका प्रेम चातक की भाँति अनन्य है—

बुधि और सुधि नैननि बेननि मैं करि बास निरंतर मंतर गौ ।

उघरौ जग छाये रहे घनआनंद चातकि त्यों तकियै अब तौ ॥८०॥

प्रेम के क्षेत्र में मीन की बिहुरनि और पंतग की मिलन दर्शनीय है। घनानन्द का वियोग इससे भी अधिक कष्ट साध्य है—

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरौ मोत-तज्यौ तरसौ ।

×

×

×

बिछुरें मिलैं मीन-पंतग-दसा कहा मो जिय की गति कों परसों॥५६॥

इसमें सचमूच हृदय की व्यथा अधिक है, वाह्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति बहुत कम।

बिहारी के विरह-वर्णन के सम्बन्ध में आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा का यह निष्कर्ष बहुत ही महत्त्वपूर्ण है^१—

“अन्य कवियों की अपेक्षा बिहारी ने विरह का वर्णन बड़ी विचित्रता से किया है, इनके इस वर्णन में एक निराला बाँकपन है—कुछ विशेष ‘वक्रता’ है, व्यंग्य का प्राबल्य है, अतिशयोक्ति का (जो कविता की जान और रस की खान है) और अत्युक्ति का अत्युत्तम उदाहरण है। × × × इस मजमून पर और कवियों ने भी खूब जोर मारा है, × × × क्रयामत बरपा करदी है, पर बिहारी की चाल—इनका मनोहारी पदविन्यास—सबसे अलग है। उस पर नीलकण्ठ दीक्षित की यह उक्ति पूरे तौर पर घटती है—

“बक्रोक्तयो यत्र विभूषणानि
वाक्यार्थदाधः परमः प्रकर्षः
अर्थेषु बोध्येष्वभि धैव दोषः
सा काचिदन्या सरणिः कवीनाम् ।”

(क) उद्दीपन-विभाव का वर्णन

शृङ्गार-रस के अवयवों का वर्णन—उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ‘ऋतु-वर्णन’ तथा ‘नखशिख-निरूपण’ आते हैं।

बिहारी ने वसन्त, ग्रीष्म आदि षट्ऋतुओं का मादक वर्णन किया है। इन्हीं के अन्तर्गत चन्द्र, चन्द्रिका, शीतल मंद पवन आदिक प्रकृति के उपकरणों का वर्णन किया है। यथा—

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध ।

ठौर ठौर झूमत झपत, झौर झौर मधु अंध ॥४६६॥

यह वसन्त ऋतु का वर्णन है। इसमें उद्दीपन द्वारा ‘संघट्ठन’ व्यंजित एवं अभिप्रेत है।

निम्नलिखित वर्णन वर्षा का है—

पावस-घन अधियार में, रह्यौ भेद यहि आन ।

रात छौस जान्यो परत, लखि चकई चकवान ॥४६६॥

वर्षा ऋतु में कोई दूती नायिका को दिन में ही अभिसार कराना चाहती है। यहाँ उसी का वर्णन है।

वासन्ती वायु का हृदयहारी एवं संश्लिष्ट वर्णन दृष्टव्य है—

रुनित भृंग घंटावली, झरत दान मधु नीर ।

मंद-मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज-समीर ॥३८८॥

ऐसा वायु किसके हृदय को वेध कर कामोद्रेक न कर देगा । इस प्रकार के उद्दीपक वर्णन बिहारी सतसई में भरे पड़े हैं ।^१

विरहिणी नायिकाओं के प्रसंगान्तर्गत भी इस प्रकार के अनेक वर्णन किए गए हैं ।^२ उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत बिहारी ने 'ऋतु-वर्णन' के साथ तत्कालीन परम्परानुसार 'होली' और 'फाग' का भी वर्णन किया है ।^३

नखशिख-वर्णन के अन्तर्गत नायिका की सुन्दरता, सुकुमारिता, विविध चेष्टाएं तथा उसके अंग-प्रत्यंग एवं उसके शृङ्गार के वर्णन किए हैं । यथा—

भूषण भार संभारि है, क्यों तन यह सुकुमार । ✓

सूधे पाँय न धर परत, सोमा ही के भार ॥३२२॥

यह नायिका के सर्वांग सौन्दर्य का वर्णन है । सुकुमारिता की सुकर ज्यजना है ।

नीचे के दोहे में नायिका के नेत्रों का कामोद्दीपक प्रभाव देखिए—

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे नैन ।

हरिनी के नैनानु तें, हरिनी के ए नैन ॥६७॥

अब नायिका की चेष्टाओं से सम्बन्धित एक उदाहरण देखिए—

त्रिबली नाभि दिखाय कैं, सिर ढंकि सकुच समाहि ।

गली, अली की ओट कैं, चली भली विधि चाहि ॥८८॥

यहां 'त्रिभली' और 'नाभि' दिखाने, बनावटी लज्जा और सिर को ढक कर चलने आदि की चेष्टाओं का वर्णन है । अब नारि का ढोल बजावै^४ वाली बात किस खूबी के साथ कह दी गई है ?

(ख) अनुभावों तथा संचारी भावों का वर्णन

बिहारी ने यद्यपि 'लक्षण-उदाहरण' वाली शैली पर अनुभाव आदि का वर्णन

१. देखें दोहा सं० १७५, ३८८, ५८५, ५९७, ६८१ ।

२. देखें दोहा सं० ५२, ६३, ११५, १२७, १७२, २२५, २६६, ३४१, ३४३, ३८४, ४८७, ४९०, ४९५, ४९७, ५६२, ५६६, ६८४ आदि ।

३. देखें दोहा सं० २८०, ३५२, ५१४, ६३३ ।

४. देखें दोहा सं० ५५, ६६, ७२, ७४, १०६, १३३, १७३ १८८, २०७, ३४०, ४८३, ५११, ५७६ आदि ।

नहीं किया है, तथापि उन्होंने अनुभाव आदिक के स्वरूप की ऐसी योजना इस सुन्दरता के साथ की है कि सजीव चित्र सम्मुख उपस्थित हो जाता है और व्यंजित भाव सरलतापूर्वक एवं पूर्णरूप से हृदयंगम हो जाता है।^१ निम्न-लिखित दोहे में 'फुरहरी' शब्द द्वारा 'कम्प' और 'पुलक' सात्त्विक अनुभावों की सुन्दर व्यंजना है—

नहिं अन्हाइ, नहिं जाइ घर, चितु चहुँदुयौ तकि तोर ।

परसि फुरहरी लै फिरति विहंसति, धंसति न नीर ॥६४५॥

निम्नलिखित दोहे में 'मोह' संचारी के साथ विभ्रम 'हाव' की सुन्दर व्यंजना है—

रहो दहेंड़ी ढिंग धरी भरी मथनिया बारि ।

फेरति करि उलटी रई, नई बिलोवनि हारि ॥२४५॥

विहारी ने विलास 'हाव' का अधिक वर्णन किया है।^२ यथा —

चितई ललचौ हैं चखनु, डटि घूँघट-पट माँह ।

छल सौं चलो छुवाइ कै, छिनकु छबोली छाँह ॥१२॥

(ग) नायिका-भद-कथन

नत्कालीन परिपाटी के अनुसार आलम्बन विभाव के अन्तर्गत विहारी ने विभिन्न प्रकार की नायिकाओं के सुन्दर वर्णन लिए हैं। विहारी के मतानुसार नायिका वह नवयौवना रमणी है जिसकी शोभा में प्रतिक्षण वृद्धि होती है तथा जिसकी विशेष प्रकार की चितवन रम-संचार करने में समर्थ होती है—

लिखन बैठि जाकी सबी गहि-गहि गरब गरूर ।

भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥३४७॥

तथा —

अनियारे दोरघ, दगनु किती न जुवति जहान ।

वह चितवन और कहु जिहि बस होत सुजान ॥५८८॥

विहारी ने स्वकीया प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। (२८८),

१. देखें दोहा सं० १२, ११८, १५४, १६६, २०६, ४७२, ५४३, ४८०, ६४५, ६५६, ६७६, ६८७ आदि ।

२. देखें दोहा सं० ७८, २४२, ४०६ तथा ६१८ ।

इन्होंने समय की परम्परा के अनुसार परकीया का ही सविस्तार वर्णन किया है। स्वकीया वर्णन में नवोठा का ही वर्णन किया है।^१ गर्भिणी की मुद्राओं एवं उसके अनुभावों का वर्णन दृष्टव्य है। इसमें भी वे उसे 'सुरत-मुखित-सी' ही देखते हैं—

दृग थिरकौहैं अधखुलें, देह-थकौहैं ढार ।

सुरत-मुखित-सी देखियति दुखित गरभ कै भार ॥६६२॥

परकीया के अन्तर्गत खण्डिता, अभिसारिका तथा मानिनी नायिकाओं का विशेष वर्णन किया है।^२ अवस्था के विचार से अधिकांश नायिकाएँ मुग्धा हैं, विरह-वर्णन, विप्रलम्भ-शृङ्गार के अन्तर्गत प्रोषित पतिका विरहिणियों की स्वभावतया चर्चा अधिक है।

निम्नलिखित दोहे में स्वयंदूतिका वचन विदग्धा नायिका का वर्णन बड़ी सफाई के साथ किया गया है—

धाम घरीक निवारिए, कलित ललित अलि पुंज ।

जमुना-तीर-तमाल तरु, मिलत मालती कूँज ॥१२७॥

बिहारी ने ग्राम-बधूटी का सुन्दर वर्णन किया है—

गोरी गदकारी परै हँमत कपोलन गाड़ ।

कँसी लसति गवाँहि यहि, मुन किरवा की आड़ ॥७०८॥

एक स्थान पर (६४७) इन्होंने कातिनहारी स्त्री की शोभा का वर्णन किया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह संसार की शृंगारिकता से ऊब गये थे—

या भव-पारावार कौं उलघि पार को जाइ ।

तिय-छवि-छाया ग्राहिनी ग्रहै बीच हों आइ ॥४३३॥

निष्कर्ष

भारतीय साहित्य में मुक्तकों के प्रचार के साथ नीति और शृङ्गार-सम्बन्धी उक्तियों का समावेश हुआ और वे दिन पर दिन बढ़ती गई। प्राकृत और अप्र-भ्रंश की जिस परम्परा के अनुसार बिहारी ने काव्य-रचना की, उसी के प्रभाव

१. देखें दोहा सं० २६६ तथा ३८६ ।

२. देखें दोहा सं० १३, १५, २३, ३४, ४६, ६५, ७२, ७६, ६३, ६६, ६७ ।
१२३, १३५, १६८, ६५६, ५४६, ५६८, ६०७, ६५३ आदि ।

के कारण इनके अनेक दोहों में मर्यादा का अतिक्रमण हो गया। प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि, “विपरीत सुरत आदि के वर्णन तो भद्दे हैं हीं, साथ ही रति और वात्सल्य के मेल अथवा वात्सल्य का तिरस्कार कर रति का ही प्रधानता से प्रतिपादन करने के कारण कहीं-कहीं ऐसी ही भद्दी रुचि का और भी परिचय दिया गया है—

विहँसि बुलाइ विलोकि उत, प्रौढ़ तिया रस घूमि ।

पुलकि पसोजति पूत कौ, पिय-चूम्यौ मुँहु चूमि ॥६१७॥

× × × बालकों के प्रति माताओं के हृदय में जो कोमल भावनायें उठ सकती हैं, उनका यहाँ पर कैसा संहार है। × × × अन्य कवियों के साथ तुलना करते हुए प्रो० मिश्र ने स्वीकार किया है कि, “प्रेम का विस्तार दिखाने के लिए जहाँ आधार ठीक नहीं पड़ा, वहीं त्रुटि दिखाई पड़ती है, अन्यथा अन्यत्र उनकी शृङ्गार भावना उत्तम बन पड़ी है।”

डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने “हिन्दी काव्य में शृङ्गार-परम्परा और महाकवि बिहारी” के अन्तर्गत बिहारी के शृङ्गार-वर्णन को दूषित करने वाली इन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है—(१) अनेक रवावों से युक्त करने की लालसा, (२) शृङ्गार के कुत्सित रूप का चित्रण (३) रीति के लक्षणों की तूति (४) ज्ञान-प्रदर्शन की प्रवृत्ति (५) आलंकारिकता का मोह (६) दोहे का रयोग तथा (७) संख्या-विस्तार की प्रवृत्ति। हमारे विचार से डा० गुप्त के इस कथन में कोई मौलिक अथवा महत्त्वपूर्ण बात नहीं कही गई है। उक्त कथन हमारे विचार से रीतिकाल के प्रत्येक कवि पर लागू होता है। डा० गह्व का यह कथन अवश्य ही विचार करने योग्य है कि, “इन मूल प्रवृत्तियों का मूल कारण चाहे जो हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि बिहारी उनसे चकर चलते तो उन्हें अधिक सफलता मिलती।”

शृङ्गार रस-वर्णन बिहारी के काव्य की आत्मा है और शृङ्गार की व्यंजना रति के माध्यम से हुई है। संयोग और वियोग-शृङ्गार के दोनों ही पक्षों के वर्णन में बिहारी ने अनेक मार्मिक उक्तियाँ लिखी हैं।

: १० :

प्रेम-भावना

“प्रेम तत्त्व की अनुभूत अभिव्यजना ही शृंगार रस की जान है। इसमें स्थूल संभोग और वाह्य सौन्दर्य का वर्णन उपकरण भले ही हो, परन्तु प्रधानतः प्रेम भाव की सहज सुकुमार, आनन्दमयी, हर्षातिरेकपूर्ण अभिव्यजना ही होनी चाहिए। ऐसा न हो कि स्थूल संभोग की काली मेघ-घटा में प्रेमचंद ढक जाए।”^१ सम्भवतः इसी कारण बिहारी ने भी प्रेम तत्त्व-निरूपण को टेढ़ी खीर बताया है—

गिरि ते ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार ।

वहै सदा पशु नरन कों प्रेम-पयोधि पगार ॥२५१॥

बिहारी ने प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। जीवन के अन्तस्थल में प्रविष्ट होकर उन्होंने अनुपम सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। उनकी सतसई में प्रेमादर्श, प्रेम प्रकर्ष, आत्मसमर्पक अधिक विभिन्न प्रेमांगों से सम्बन्धित दोहे उपलब्ध हैं। इन्होंने प्रेम के लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही पक्षों का उत्कृष्ट वर्णन किया है। उत्तमा प्रतिव्रता नारी ध्यान द्वारा अपने पति को अपने आप बुला लेती है—

ध्यान आनि ढिंग प्रानपति, मुदित रहति दिन राति ।

पलकुंकंपति पुलकति पलकु पुलक पसीजति जाति ॥२५४॥

बिहारी ने ‘जो जाके मन में बसे सोई ताके पास’ वाली स्थिति वियोगावस्था में संयोग का वर्णन करके प्रस्तुत की है। सच्ची प्रेमिका का यह स्वरूप स्पृहणीय है—

कहा भयो जौ बीछुरे, मो मन तो मन साथ ।

उड़ी जात कितहू गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ ॥२७॥

१. बिहारी-दर्शन (लोकनाथ द्विवेदी) ।

प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दों में “इस उक्ति में कवि की अवेक्षणशक्ति की ही नहीं, प्रेम के विस्तार की भी दिव्य झलक मिलती है।” इस प्रसंगान्तर्गत डा० हरवंशलाल शर्मा की टिप्पणी दृष्टव्य है—“ज्ञान क्षेत्र में ज्ञाता और ज्ञेय तथा भक्ति-क्षेत्र में उपासक और उपास्य की एकता की भाँति प्रेम-क्षेत्र में प्रेमी और प्रिय की एकता प्रेम का चरम विकास है—

पिय कै ध्यान गही, गही रही वही हूँ नारि ।

आपु आपु हों आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥५८३॥

‘तदेव चिन्तायति’ के विषय में बिहारी ने लिखा है कि—

प्रेम अडोल डुलै नहीं, मुख बोलै अनखाय ।

चित्त उनकी मूरति बसी, चितवन माँहि लखाय ॥६३॥

इस प्रेम के उत्पादक कारण का कोई मापदण्ड निर्धारित नहीं किया जा सकता है। “मीठी कहा ? जो जाहि भावै तथा नीकौ कहा ? जो नाहि भावै” दोनों ही जीवन के सत्य हैं। बिहारी ने भी केवल चित्त को अच्छा लगना मात्र प्रेम का फूल और फल दोनों ही माना है—

समँ समँ सुन्दर सबै, रूप-कुरूप न कोय ।

मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय ॥४३२॥

सौन्दर्य की सफलता प्रेम में है। बिहारी ने भी प्रेम को सौन्दर्य का प्राण माना है—

जद्यपि सुन्दर सुघर पुनि सगुनौ दीपक देह ।

तऊ प्रकास करै तितौ भरियँ जितै सनेह ॥६५८॥

ठीक ही है, दीपक रूपी शरीर उतना ही शोभायमान अथवा प्रकाशित होगा, जितना उसमें तैल रूपी स्नेह होगा।

डा० हरवंशलाल शर्मा ने ‘बिहारी और उनका साहित्य’ के अन्तर्गत लिखा है कि बिहारी ने प्रेम को अत्यन्त गम्भीर मनोभाव स्वीकार किया है। × × × प्रेम को वे शुद्ध सात्त्विक भाव मानते हैं, उसमें छल, कपट आदिक तमोगुणी भावों के लिए तो स्थान है ही नहीं। रजोगुण तक का स्पर्श भी मलिनता ही उत्पन्न करने वाला है—

जो चाहौ चटक न धटै मेलो होय न मित्त ।

रजराजस न छुआइये नेह चीकने चित्त ॥ ६६५ ॥

बिहारी ने प्रेम के निर्वाह की तुलना ‘चोगान’ के खेल से की है। प्रेम को

सफल बनाने के लिए सरस मनोहर हृदय के अनेकाअनेक भावों की अस्पृहणीय जन से रक्षा करते हुए अन्त तक निर्वाह करना आवश्यक होता है—

सरस सुमिल चित तुरंग की करि करि अमित उठान ।

गोह निबाहैं जीतिए खेलि प्रेम चौगान ॥१७८॥

सच्चे प्रेमी को अपने प्रेमपात्र की प्रत्येक बात, प्रत्येक चेष्टा अच्छी लगती है यहाँ तक कि उसके अवगुण भी आकर्षक प्रतीत होते हैं । इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का निरूपण बिहारी ने 'जेते औगुन ढूँढियै गुनै हाथ परिजाय' कहकर किया है ।

विरहाग्नि में तपकर प्रेम-हेम की निकाई निखरती है, उसका उदात्त-कांचन स्वरूप प्रकट होता है । बिहारी की नायिका का प्रेम ऐसा ही है, जो विरहाग्नि में विकसित होता है—

नैकु न झुरसो विरह-झर नेहलता कुम्हिलात ।

नित-नित होति हरी-भरी खरी झालरति जात ॥६८॥

डा० हरवंश लाल शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि, “वाल्मीकि की सीता ने प्रिय के साथ वन की कठिनाइयों को भी कुछ नहीं समझा था; पर बिहारी की नायिका को तो प्रिय के साथ में नरक की भी ‘धरक’ नहीं—

जो लहिए संग सजन तौ धरक नरक हू को न ॥

गोस्वामीजी ने आदर्श प्रेमी के रूप में ‘चातक’ को स्वीकार किया है, बिहारी ने यह गौरव चकोर को प्रदान किया है, जो अपने प्रियतम चन्द्रमा की किरणों को ही ग्रहण करता है, अन्यथा वियोग में आग की चिनगारियाँ ही चुनना पसन्द करता है—

चिनु दै देखि चकोर ज्यों तीजें भजें न भूख ।

चिनगी चुगै अंगार की, चुगै कि चन्द मयूख ॥५४४॥

सच्चा प्रेम प्रेमियों के हृदयों को एक बना देता है । संसार की कोई भी वस्तु उनके मार्ग का रोड़ा बनकर नहीं आसकती—

उनौ हित उनहीं बनै कोऊ करौ अनेक ।

फिरत काकगोलक भयौ दुहँ देह ज्यों एक ॥४४५॥

बिहारी के प्रेम-निरूपण की ववेचना के निष्कर्ष रूप प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि, “इसके अतिरिक्त बिहारी की कविता में बाहरी

अथवा मुसलमानी प्रभाव के कारण भी प्रेम के स्वरूप में कुछ ऐसी बातें आई हैं जो भारतीय रस-पद्धति के प्रकृत स्वरूप के मेल में नहीं हैं और भाव के वास्तविक निरूपण को दृष्टि में रखने से कुछ हलकी जान पड़ती है।
 × × × विदेशी प्रेम के आदर्श के सामने आ जाने पर लोगों ने उसका ग्रहण भीषण रूप में भी किया। × × × पर जो लोग भारतीय पद्धति के जानने वाले थे उन्होंने धोखा नहीं खाया, उन्हें ग्रहण करके भी ऐसे ढंग से रखा कि वे भारतीय रस-परम्परा के भीतर ही दिखाई पड़ सकें। बिहारी की इस ढंग की कविताएँ ऐसी ही हैं। एक उदाहरण लीजिए—

छुटन न पैयतु छिनकु बसि, नेह नगर यह चाल ।

मार्यौ फिरि-फिरि मारिये, खूनी फिरि खुस्याल ॥३२५॥

‘रतनहजारा’ से एक उदाहरण प्रस्तुत करके प्रो० मिश्र ने यह दिखाया है कि अन्य कवि बाहरी प्रभाव में डूब-से गए हैं। परन्तु बिहारी की कविता में बाहरी प्रभाव सहसा लक्षित नहीं होता है। “उन्होंने उसे माँजकर भारतीय रूप में ऐसा मिलाया है कि जोड़ झलकता ही नहीं। यह भी बिहारी की अन्य तत्कालीन कवियों से एक विशिष्टता ही थी। वे अपनी देश परम्परा को छोड़ कर कभी अलग खड़े नहीं हुए।”

बिहारी के मतानुसार प्रेम का उदय होते ही कुटुम्ब की मर्यादाएँ, समाज के नियम एवं लोक-लज्जा आदि के बन्धन, शिथिल पड़ जाते हैं—

क्यों बसिए, क्यों निबहिये, नीति नेह-पुर माँहि ।

लगालगी लोइन करें, नाहक मन बँधि जाँहि ? ॥४०७॥

तब प्रश्न उठता है कि प्रेम किया जाए या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर बिहारी ने बहुत ही चतुरता एवं सफाई के साथ दिया है। प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है। यौवनावस्था की उद्दामतरंगों में न्यूनाधिक सभी बह जाते हैं, यानी यह जवानी का तकाजा है—

इक भीजें, चहलें परें, बूड़े बहैं हजार ।

किते न औगुन जग करें, वनैं चढ़ती बार ॥४६१॥

बिहारी श्रीस्वामी हरिदास के सम्प्रदाय के महंत श्रीनरहरिदासजी के शिष्य और माधुर्य रस पूर्ण सखी भाव की भक्ति वाले श्रीराधाकृष्ण के अनन्य

उपासक थे। तदनुकूल दिव्य प्रेम की व्यंजना इनके दोहों में यथास्थान प्राप्त होती है—

जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति मुंह दोन ।

सो लहिए सँग सजन जो, धरक नरक हू कीन ॥७५॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहि कोय ।

ज्यों ज्यों बूढ़े स्याम रंग त्यों त्यों उज्ज्वल होय ॥१२१॥

ये मधुर भक्ति के प्रेम की उत्कृष्टता के सुन्दर उदाहरण हैं। भक्ति की अनन्यता के साथ-साथ अद्वैतवाद के दार्शनिक सिद्धान्त की भी झलक देखिए—

मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोह ।

बसत सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ ॥१६१॥

नथा—

कीनें हू कोटिक जतन, अब गहि काढ़े कौन ।

मो मन मोहन रूप मिलि पानी में को लौन ॥१८॥

इतना होने पर भी बिहारी का प्रेम इन्द्रियों तथा वासनाओं की तृप्ति के मधुर साधन के रूप में ही है। डा० गणपति चन्द्र गुप्त के शब्दों में, “बिहारी का प्रेम उस कोटि का नहीं है जो प्रेम के लिए जीवन का बलिदान कर दे। उनकी दृष्टि में जीवन के लिए प्रेम है, न कि प्रेम के लिए जीवन।

वस्तुतः बिहारी का प्रेम रसिकता और विलासिता का ही पर्यायवाची है।”

इन पंक्तियों के लेखक द्वारा लिखित ‘रीतिकालीन कविता एवं शृङ्गार रस का विवेचन’ ग्रन्थ के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में प्रकट किया गया निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण है—“बिहारी ने शृङ्गार के मानुषी तथा ईश्वरीय दोनों ही पक्षों का वर्णन किया है और प्रेम की अनेक अवस्थाओं का निरूपण किया है। परन्तु इनके काव्य में मानुषी शृङ्गार की ही प्रधानता है। तन्त्रीनाद, कवित्त-रस सरस-राग और रति-रंग (१४) × × × के सागर में अवगाहन करके जीवन को सफल मानने वाले रसिक व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक ही था।”

: ११ :

भक्ति—भावना

रीति कवियों की भक्ति-भावना और बिहारी—रीतिकाल के शृंगारी कवियों की भक्ति-भावना का विश्लेषण करते हुए डा० हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि, “भक्ति की स्थली पर जिस अलौकिक प्रेम को उन्होंने (कृष्ण भक्त कवियों ने) उतारा था, रीतिकालीन कवियों ने इसे भौतिक विलास के आधार पर टिकाया क्योंकि जहाँगीर और शाहजहाँ जैसे रसिक सम्राट तथा इनका अनुकरण करने वाले सामन्तों के युग का प्रभाव ही ऐसा था। × × × (वे लोग) भगवद्विषयक रति के उस सामान्य स्तर पर खड़े थे जिस पर संसार का प्रत्येक मनुष्य त्रिविध ताप से सतप्त होने पर क्षण भर के लिए खड़ा होता है और भगवान के सामने अपनी भूल की क्षमा के लिए अनुनय-विनय करता हुआ दीख पड़ता है।”

डा० नगेन्द्र ने इस स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिखा है कि, “वास्तव में यह भक्ति भी उनकी शृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर तो सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरण भूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। × × × इसीलिए रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य में भक्ति का आभास अनिवार्यतः वर्तमान है और नायक नायिका के लिए बार-बार ‘हरि’ और ‘राधिका’ शब्दों का प्रयोग किया गया है।”

रीतिकालीन अन्य कवियों की भांति यद्यपि बिहारी ने भक्ति का सैद्धान्तिक निषेध तो नहीं किया, तथापि शृंगारिक भावना के आवेश में मुक्ति का निषेध अवश्य किया है—

जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति-मुंह दीन ।

जै लहिए संग सजन तौ, धरक नरक हैं कोन ॥७५॥

तथा—

चमक, तमक, हांसी, ससक, मसक, झपट लपटानि ।

ए जिहि रति, सो रति मुकति और मुकति अति हानि ॥७६॥

भक्ति सिद्धान्त और बिहारी—मिथुबन्धु ने बिहारी की भक्ति-भावना के विषय में लिखा है कि, “इतने बड़े शृंगारी होकर भी इन्होंने दो एक छन्द भक्ति के भी लिखे हैं। इनका अद्वैत मत जान पड़ता है। परन्तु इनको भक्त कहना वितंडा मात्र है।”

इन्होंने शृंगारी होकर भक्ति के छन्द क्यों लिखे तथा इनको भक्त कहना वितंडा मात्र क्यों है—इन दोनों बातों का स्पष्टीकरण हम पहले ही कर चुके हैं। बिहारी को अद्वैतवादी बताने वालों को उत्तर देते हुए डा० हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि, “परन्तु जिन्हें वाल की खाल निकालने की आदत है वे लोग यदि—

में समुझ्यौ निरधार यह जग काँचौ काँच सौ ।

एकं रूप अपार प्रतिबिम्बित लखियु जहाँ ॥१८॥

को देखते ही एक दम बिहारी को बड़ा भारी अद्वैतवादी करार दे दें तो क्या किया जाय ?”

बिहारी को अद्वैतवादी आदि बताने के पूर्व हमें भक्त-कवियों के सिद्धान्त-प्रतिपादन-पद्धति पर विचार कर लेना चाहिये। इस सम्बन्ध में डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि, “× × × हिन्दी में भक्ति का उपदेश देने वाले भी कोई विशेष मतवाद लेकर नहीं चलते थे। सूर और तुलसी में किसी विशेष मत का प्रतिपादन नहीं मिलता। ये भक्त अपनी वाणी द्वारा भगवान की लीला-वर्णन करके लोगों के हृदय को प्रफुल्लित करना चाहते थे। × × × मतवाद से ये लोग दूर ही रहा करते थे। × × × भक्त कवि ज्ञान के क्षेत्र का निरूपण करने नहीं गए।”

इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी जैसे संसारी कवि ने भक्ति के किसी विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादन कदापि न किया होगा। जिस समय जिस प्रकार की उक्ति सूझ गई वैसी रचना कर डाली। और फिर बिहारी ने तो समस्त मतवाद से अलग रहने की बात भी स्पष्टतः कह दी है—

अपने अपने मत लगे बादि मचावत सोर ।

ज्यों त्यों सबकों सेइबौ एकें नंद किसोर ॥५८१॥

बिहारी न तो निर्गुण और सगुण के पचड़े में पड़े हैं और न राम और कृष्ण के भेद भाव में । उन्होंने निर्गुण की व्यापकता भी बताई है (४२८) और अपने आपको सगुण के गुणों में बाँधने की बात भी कही है (२६१) । उन्होंने कृष्णोपासना की चर्चा भी की है (६१, ५६१) और साथ ही राम के महत्त्व का प्रतिपादन भी किया है (६१, ४०१) । सूर और तुलसी ने भी किसी प्रकार के भेद-भाव बिना राम और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है । इन्हीं उक्तियों का आधार भगवान की एक सामान्य भावना रही है । बिहारी ने भी बिना किसी भेद-भाव के भगवान की लीलाओं को ग्रहण किया है—

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखनी मुरारि ।

बोधे मोसौ आहकै, गोधे गोर्धाहि तारि ॥३१॥

‘गोधे’ को तारने वाले राम थे, मुरारि नहीं । अस्तु ।

भक्ति भावना—दैत्य भक्तों का बड़ा बल है । भक्त को अपने अवगुण देखने में ही नहीं, बल्कि उनको उठा-उठा कर दिखाने में विशेष प्रकार के सन्तोष का अनुभव होता है । सूर, तुलसी आदिक भक्त कवियों ने अपने आपको पातकी, पतितों का हीका, खोटा-छोटा न मालूम क्या-क्या कहा है । बिहारी ने भी अपने अवगुणों और भगवान के तारन-विरद कि यथा स्थाना चर्चा की है—

कोजै सोई तरै, जिहि पतितन से साथ ।

मेरे गुन-औगुन-गनन, गनीन गोपीनाथ ॥२२१॥

आराधा के निकट पहुँच कर बिहारी कभी हास-उपहास की चेष्टा करते हैं (४२७) और कभी निकटता के कारण भगवान को हल्का सा उपालम्भ भी दे बैठते हैं (११, ६८, ७१, ६६०)—

कब कौ डेरन दोन रट होत न स्याम सहाह ।

तुमहू लागी जगद्गुरु जगनायक जगबाइ ॥७१॥

यहाँ एक बात स्मरण रखना चाहिए । बिहारी भक्त होने की अपेक्षा कवि अधिक थे । इनकी उक्तियों में वाग्वैदग्ध्य का चमत्कार अधिक है । उनके कथन के बाँकयन दृष्टव्य हैं—

करौ कुबत जगु कुटिलता तजौ न दीनदयालु ।

दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ॥४२५॥

बिहारी ने भक्त और संत कवियों की भाँति संसार की नश्वरता, विषय वासनाओं की कलुषितता और नारी की मोहिनी मूर्ति की निन्दा भी की है—

यां भव-पारावार कौं उलैंकि पार को जाइ ।

तिय-छवि-छायाग्राहिनी ग्रहै बीचहीं आइ ॥४३३॥

बिहारी यह भी स्वीकार करते हैं कि भगवान की भक्ति के लिए हृदय में मन्त्रा भाव चाहिए। कपटी के पास भगवान नहीं आते हैं—

जपमाला छापै तिलक सरै न एको कामु ।

मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राचै रामु ॥४४१॥

तौ लगु या मन-सदन में हरि आवैं किहि बाट ।

बिकट जटे जौ लगु निपट खुहैं न कपट-कपाट ॥४६१॥

कपटी भक्त को फटकार बताने के कारण कर्णकटु 'टकार' इस जगह श्रुतिमधुर बन गई है।

उनका स्पष्ट मत है कि सुख और दुख दोनों को ही भगवान की देन से रूप में स्वीकार करना चाहिए—

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईहि न भूलि ।

दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि ॥५१॥

एक भक्त की भाँति उनकी भी यही प्रार्थना है कि—

हरि कीजति बिनती यहै तुमसौं बार हजार ।

जिहिं तिहिं भाँति डर्यौ रह्यौ, पर्यौ रह्यौ दरबार ॥२४१॥

निष्कर्ष

“उनमें भक्ति भावना तो मिलती है किन्तु वह सतसई की एक गौण प्रवृत्ति के रूप में ही है। × × × उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है —

करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाव ॥७१३॥

× × × हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्ति-भावना की व्यंजना

बिहारी सतसई में गौण प्रवृत्ति के रूप में हुई है। हाँ, इतना अवश्य है कि बिहारी के अधिकांश भक्ति-सम्बन्धी दोहे अनुभूतिपूर्ण हैं।^१

“बिहारी की भक्ति विषयक उक्तियों की जो चर्चा ऊपर की गई है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बिहारी उच्च कोटि के सहृदय कवि थे जिनकी रचनाओं में विविध भावों की मनमोहिनी अभिव्यक्ति हुई है। उनका वर्ण्य विषय प्रधानतया शृंगार अवश्य है, परन्तु सच्चे हृदय से निकली हुई भक्ति-भाव पूर्ण उक्तियाँ भी उनकी रचना में अवलोकनीय हैं। भक्ति-भाव-सम्बद्ध इन उक्तियों में भक्ति की सामान्य भावना का विशेष स्वरूप ही समझना चाहिए।”^२

हमारे विचार से बिहारी की भक्ति-भावना के सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष अधिक युक्ति संगत एवं महत्त्वपूर्ण है। यथा—

“× × × इनकी कविता में सब प्रकार की भावनाएँ मिलती हैं। × × × भक्ति की जो सामान्य भावना आगे के कवियों में दिखाई पड़ती है, बिहारी की कविता उसका पूर्व आभास देती है। तुलसी आदि के प्रयत्न से साम्प्रदायिकता का बाँध टूट जाने से भक्ति की रचना को जो विस्तार प्राप्त हुआ वह बिहारी में भी मौजूद है और आगे के कवियों में भी मिलता है। × × × उनकी वाणी का वाँकपन भक्ति-सम्बन्धी इन उद्गारों में भी बराबर मिलता है। मुखी भक्ति की उक्तियाँ बिहारी ने नहीं लिखी हैं, वे उनके कवित्व से बराबर सरस होकर सामने आई हैं।”^३

×

×

×

“बिहारी भक्त नहीं थे × × × भक्ति को सामान्य रूप में ही बिहारी ने स्वीकार किया। किसी दार्शनिक मतवाद या साम्प्रदायिक आधार पर ग्रहण नहीं किया। बिहारी जैसे सांसारिक कवि के काव्य को साम्प्रदायिक दृष्टि से

१. पृ० सं० ४१८, हिन्दी काव्य में शृङ्गार-परस्परा और बिहारी—
डा० गणपति चन्द्र गुप्त

२. पृ० सं० २२१, बिहारी और उनका साहित्य, डा० हरवंश लाल शर्मा।

३. पृ० सं० १७६, ‘बिहारी की वाग्विभूति, प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

किसी मतवाद में बाँधना कवि के साथ अन्याय करना है ।”^१ तत्त्वज्ञान, निर्वेद, वैराग्य भावना, स्त्री के कामिनी रूप का त्याग, भगवन्नामस्मरण आदि बातें तो प्रसंगवश ही आई हैं ।^२

१. पृ० सं० ५२२, हिन्दी साहित्य का बृहत्, इतिहास, षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण ।

२. बिहारी रत्नाकर दोहा सं० ३७१, ४३३, ५१, २४१ ।

: १२ :

जातीय भावना

मिश्र-बन्धु ने 'हिन्दी-नवरत्न' में बिहारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन करते हुए लिखा है कि, "बिहारीजी ने शिवाजी की पराजय का हाल स्पष्ट नहीं लिखा है यद्यपि खास जैसाहि ने उन्हें हराया था। इससे जान पड़ता है कि मुगलों की ओर से जैसाहि को शिवाजी से लड़ना इन्हें भला न लगा। इस बात से प्रच्छन्नरूप से इनका जातीय प्रेम भी दीख पड़ता है।"

हमारे विचार से बिहारी की राष्ट्रीय अथवा जातीय भावना प्रच्छन्न न होकर सर्वथा स्पष्ट थी। उन दिनों वर्तमान काल की भाँति राष्ट्रीयता की भावना विकसित नहीं हो पाई थी। अतः मुगल-शासन की प्रशंसा न करना अथवा उस समय की शासन-नीति का गुणगान एवं समर्थन न करना भी जातीय-प्रेम का लक्षण माना जाना चाहिए। डा० रामसागर त्रिपाठी ने भी लिखा है कि, "बिहारी की सतसई का अध्ययन करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि बिहारी में भी राष्ट्रीय भावना पर्याप्त मात्रा में थी।" हाँ, इतना अवश्य है कि बिहागी की यह भावना भूषण से सर्वथा भिन्न थी। है। इसके दो कारण हैं—(१) बिहारी के आश्रयदाता मुगलों के विरोधी नहीं थे, तथा (२) इनका जीवन जहाँगीर और शाहजहाँ के उदार शासन-काल में व्यतीत हुआ था, जब कि भूषण ने औरंगजेब के अत्याचार देखे थे।

बिहारी के आश्रयदाता जयसिंह मुगलों के पक्षपाती थे। बिहारी को यह अच्छा न लगता था। इस स्थिति के प्रति उनका आत्मा विद्रोह करता था। उन्होंने अन्योक्ति पद्धति पर जयसिंह तथा उनके समानधर्मा राजाओं को मुगलों का साथ छोड़ देने को स्पष्ट परामर्श दिया है—

स्वारथु सकृत् न श्रमु वृथा देखि विहंग, विचारि ।

बाज पराए पानि पर तू पच्छीनु न मारि ॥३००॥

तत्कालीन पक्षपातपूर्ण एवं स्वार्थपरक नीतियों को देख कर बिहारी का

हृदय विद्रोह कर उठता था । अपनी इस मनोव्यथा को बिहारी ने अन्योक्तियों द्वारा यथास्थान अभिव्यक्त भी किया है । इस सम्बन्ध में डा० त्रिपाठी का वक्तव्य दृष्टव्य है, “××× यद्यपि जयसिंह की परम्परागत बद्धमूल मुगलों के प्रति पक्षपात की भावना को दूर करने में बिहारी की वाणी समर्थ नहीं हो सकी थी, तथापि भूषण की अभिधावृत्ति में प्रकट की हुई जातीय भावना की अपेक्षा बिहारी की व्यंजना वृत्ति के माध्यम से प्रकट की हुई यह भावना कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।”

उत्तराधिकार के युद्ध में जयसिंह ने औरंगजेब की बहुत सहायता की थी । इस तथ्य को ध्यान में रख कर बिहारी ने दो दोहों में ऐसा संकेत भी किया है कि यदि जयसिंह मुगलों का साथ छोड़ दें तो न तो औरंगजेब को इतनी विजय ही प्राप्त हो और न उसके कारण हिन्दुओं को इतना संताप ही भुगतना पड़े ।^१

शिवाजी के साथ संधि हो जाने पर बिहारी ने प्रसन्न होकर जयसिंह का अभिनन्दन किया था—

घर-घर तुरकिनि, हिंदुनी देति असोस सराहि ।

पतिनु राखि चादर-चुरी, तै राखी जयसाहि ॥७१२॥

बिहारी को जयसिंह द्वारा मुगलों का पक्षपात अरुचिकर था । सम्भवतः इसी कारण न तो उन्होंने प्रशस्ति सम्बन्धी अधिक रचना की और न इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण एवं अत्युक्तिपूर्ण दोहे ही लिखे ।

: १३ : जीवन-दर्शन

यद्यपि बिहारी की कविता शृंगारिकता में आकण्ठ निमग्न है तथापि केवल उसी के आधार पर बिहारी के जीवन-दर्शन के विषय में निष्कर्ष प्रस्तुत करना सर्वथा न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने जो कुछ लिखा, उसमें तत्कालीन लोकस्वचि ही प्रमुख हेतु थी। उसमें लोक जीवन की छाया ही मानना चाहिए, बिहारी के व्यक्तिगत आचरण की प्रतिच्छाया नहीं। हमारे विचार से व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से जिनका आचरण पवित्र नहीं था, उनको लक्ष्य करके बिहारी ने इस प्रकार के कथन किये थे—

जम करि मुंह-तरहरि पर्यौ, इहि धरि हरि वित लाउ ।

विषयतृषा परिहरि अजौ, नरहरि के गुन गाउ ॥२१॥

बिहारी के निम्नलिखित दोहे को देख कर कतिपय महानुभाव उन्हें 'रति-रंग' का समर्थक भले ही कह दें—

तन्त्रीनाद कवित्त रस सरस राग रतिरंग ।

अनबूड़े बूड़े तिरे जो बूड़े सब अंग ॥६४॥

परन्तु उनको यह स्मरण रखना चाहिए कि उक्त दोहा भर्तृहरि के "साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाण-होनः" के कथन के अनुसार है। इतना ही नहीं, बिहारी ने अरसिक लोगों को, जिनके मन में प्रेम का प्रवाह नहीं है, उनको पशुवत् बताया है—

गिरि तैं अँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार ।

वहै सदा नर पसुन को प्रेमपयोधि पगार ॥२५१॥

इस सम्बन्ध में हम डा० हरवंशलाल शर्मा के इस कथन से पूर्णतया सहमत हैं—“यह सब उनके कविकर्म से ही सम्बद्ध है, व्यक्तिगत जीवन से नहीं।

× × × बिहारी की रसिकता का मेरुदण्ड विलासिता नहीं, कलाप्रियता है।

× × × उथली प्रेम भावना इन्हें पसन्द नहीं। उनका प्रेम वास्तव में पयोधि है

जिसमें गम्भीरता और प्रसाद दोनों हैं और है मर्यादा में रहने की प्रवृत्ति । वह चटक नहीं छोड़ता, समाप्त भले ही हो जाय—

चटक न छाँड़तु घटत हैं, सज्जन नेहुँ गम्भीर ।

फोको परै न, बरु घटे, रंग्यौ चोलरंग चीरु ॥६६८॥

बिहारी की रसिकता नागरिकता में निहित है और वह नागरिकता के ही पोषक थे । उन्होंने कई स्थलों पर नागरिकता की प्रशंसा की है तथा यह चिन्ता प्रकट की है कि कोई नागरिक किसी गाँव में पहुँच कर कही बेवकूफ न बने । ग्रामीण नायिकाओं की अपेक्षा उन्हें नागरी नायिकाओं ने ही अधिक आकर्षित किया था ।

बिहारी मनमौजी, मस्त और विनोदी प्रकृति के व्यक्ति थे । उनकी इस प्रवृत्ति को लक्ष्य करते हुए प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि, “कहने की यह वक्रता इनके स्वभाव की वक्रता का भी संकेत कहती है ।”

प्रो० मिश्र के इस कथन का विश्लेषण करते हुए डा० हरवंशलाल शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि, “स्वभाव की वक्रता, बिहारी पर मिश्रजी का एक गम्भीर आरोप है । ऐसा प्रतीत होता है कि वे अनजाने ही इन शब्दों का प्रयोग कर गए हैं उनके वास्तविक अर्थ पर उनका ध्यान नहीं रहा होगा । × × × जीवन का अनुभव बताता है कि प्रायः विनोदी व्यक्ति हृदय के सरल होते हैं ।”

‘को बड़ छोट कहत मोहि दोषू’ के अनुसार हम उपर्युक्त दोनों ही आचार्यों के मतों को समान आदर की दृष्टि से देखते हैं । परन्तु एक तथ्य अवश्य विचारणीय है । बिहारी ने अपने समय की परम्परा अथवा जमाने की हवा के अनुसार अपने आश्रयदाता की न तो झूठी प्रशंसा ही की और न अत्युक्तिपूर्ण प्रशान्ति ही की । अतएव डा० शर्मा का यह निष्कर्ष सर्वथा युक्तियुक्त है कि, “× × × जो भगवान के हृदय प्रवेश के लिए ‘निपट जहे कपट-कपाटों’ को खोल देने का हिमायती हो वह यदि ढोंगी नहीं है तो वक्र स्वभाव का हो ही नहीं सकता और यह निश्चय है कि बिहारी ढोंगी नहीं थे । उनका हृदय सच्चा था और वे झूठ से दूर थे ।

बिहारी ने सम्पत्ति को ‘औगुन भरी’ ही के रूप में देखा था । केवल मर्यादा के निर्वाह-हेतु ही, काम चलाने भर के लिए ही, वह सांसारिक वैभव को आवश्यक मानते थे । वह सम्पत्ति को दाँत से नहीं, हाथ से पकड़ने के हिमायती थे—

तौ अनेक औगुन भरिहि चाहै याहि बलाइ ।

जौ पति संपतिहू बिना, जदुपति राखे जाइ ॥४२१॥

इनके जीवन का आदर्श ही यह था कि—

पटु पौरवें भखु कांकरें, सपर परेई संग ।

सुखी परेवा पुहुमि में, एकें तुही विहंग ॥६१६॥

त्याग और अपरिग्रह की भावना उनके अन्य दोहों में भी प्रतिविम्बित हुई है ।

बिहारी की सतसई का अध्ययन करने के पश्चात् यह भी स्पष्टतः प्रकट हो जाता है कि वह सर्वथा आस्तिक एवं कर्म-फल सिद्धान्त में आस्था रखने वाले चिन्तनशील व्यक्ति थे—

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईंहि न भूलि ।

दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि ॥५१॥

तथा—

दियौ सु सीस चढ़ाइ कै, आछी भाँति अहोरि ।

जापै सुखु चाहतु लियौ, ताके दुखहि न फेरि ॥८१॥

‘भक्ति-भावना’ के अन्तर्गत हम यह स्पष्ट कह ही चुके हैं कि वह साम्प्रदायिकता से कोसों दूर थे तथा मत-मतान्तर एवं वितण्डावाद उन्हें अरुचिकर था (५८१) साथ ही पारमार्थिक दृष्टि से वह ‘कामिनी’ को विकास-पथ की बाधा मानते थे । (४३३)

• धार्मिक क्रिया-कलाप, बाह्य आडम्बर एवं कर्म-काण्ड की अपेक्षा बिहारी सत्संगति को अधिक महत्त्व देते थे । (२०) उनके विचार से विनयशीलता मनुष्यता का लक्षण अथवा शोभा थी । (११७, ३२१) !

बिहारी के जीवन-दर्शन से सम्बन्धित अन्य बातें इस प्रकार हैं—

झूठी बड़ाई प्राप्त कर अपने आपको बड़ा समझना व्यर्थ है । (१६१)

अल्पकाल के लिए प्रभुता प्राप्त होने पर इतराना अनुचित है । भिखी की भाँति चमड़े का सिक्का चलाने वालों को याद रखना चाहिए कि, “चार दिना की चाँदनी फेरि अँधेरी रात ।” (४३४, ६६६) ।

बिहारी बड़े ही स्वाभिमानी व्यक्ति थे तथा किसी के गले पड़ना अथवा किसी का पिछलग्गू होना वह उपहासास्पद समझते थे । (३७६, ३७८)

बिहारी की मित्रता का आदर्श सर्वथा सात्त्विक था । राजसी भावनाएँ मैत्री के पवित्र क्षेत्र में प्रविष्ट नहीं होनी चाहिए । (३६९) ठीक ही है, “दोस्तों से रखिए लेन-देन, साफ़ कायम अगर आपको रखनी है दोस्ती ।” साधन की कसौटी बिहारी के मतानुसार सिद्धि का स्वरूप थी । साधन वही है जो अभीष्ट की सिद्धि में सहायक हो—

अति अगाध अति औयरौ, नदी कूप सरु बाइ ।

सो ताकी सागरु जहाँ, जाकी प्यास बुझाइ ॥४११॥

डा० हरवंशलाल शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि, “यह उपयोगितावाद अपने परिष्कृत या विकृत रूप में पाइ जाने वाली एक सार्वभौम, सार्वकालिक एवं विश्वजनीन मनोवृत्ति है जिसका मूल कोरे आदर्श में नहीं, क्रियात्मक जीवन-दर्शन में बैठा हुआ है ।” यह तथ्य बिहारी के अनेक दोहों में स्पष्टतः प्रकट हुआ है । (३६६, ३६७) सारांश यह है कि बिहारी विधि के विधान को सर्वोपरि मानते थे । मनुष्य के गुण और स्वभाव गर्भ में ही लिख जाते हैं । अतः उनमें परिवर्तन का प्रयत्न विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता है । (३६७), तथा जो होता है, सो होगा । राम भरोसे जे रहें, ते पर्वत पै हरिहाँय (४७१) । ‘जातीय-भावना’ के अन्तर्गत उनकी अन्योक्तियों की चर्चा करते हुए हम बता चुके हैं कि दासता की शृंखलाएँ उन्हें कभी भी रुचिकर नहीं हुई । विदेशी शासक के प्रति वफादारी को वह “गुनाह और बेलज्जन” मानते थे । (३००)

जवानी की गलतियों को किसी हद तक माफ़ करने के क्राविल बताने के साथ-साथ बिहारी ने जवानी के तूफान को औगुनकारी माना है । (४६१)

“संक्षेप में बिहारी के सिद्धान्त वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के शतशः अनुभवों का निचोड़ है और उनके आदर्श भगवन्निष्ठा और सजीव जीवन के सुदृढ़ स्तम्भों पर टिके हैं, कोई हवाई किले नहीं । रसिकता, मस्ती, फक्कड़पन, स्वाभिमान आदि जन्मजाल गुणों ने उनके जीवन-दर्शन को सहज व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया जिसमें आकर्षण है, आगति नहीं, उच्चता है किन्तु दुर्गमता नहीं, गम्भीरता है किन्तु अभेद्य सघनता नहीं । अतएव वह सराहनीय ही नहीं स्पृहणीय भी है और स्पृगीह्य ही नहीं महनीय भी है ।” (डा० हरवंशलाल शर्मा, बिहारी और उनका साहित्य)

बिहारी एक मुक्तकार थे । मुक्तककाव्य के क्षेत्र में आने वाले प्रायः समस्त विषयों पर उन्होंने आनुपगिक रूप से रचना की है । उन्होंने जो कुछ भी सूक्तियाँ

लिखीं, वे व्यावहारिक जीवन को दृष्टि में रख कर लिखी थी। उनकी कतिपय 'दर्शन' सम्बन्धी कतिपय उक्तियों को देख कर उन्हें किसी दार्शनिक मतवाद अथवा सम्प्रदाय के साथ बाँधना अथवा सम्बद्ध करना बिहारी के प्रति अन्याय ही कहा जायगा।

भारतवर्ष में जो दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन हुआ, वह इने-गिने ग्रन्थों में बन्द और किसी वर्ग विशेष में सीमित न रह कर जन-साधारण में प्रचलित हुआ। फलतः अर्द्ध शिक्षित अथवा अपढ़ जनता भी उनसे परिचित हो गई। ईश्वर की सर्व व्यापकता एवं संसार की प्रसारता की चर्चा हमारे यहाँ प्रायः सुनी जाती है। श्मशान वैराग्य प्रसिद्ध है। ऐसे अवसरों पर निरक्षर व्यक्ति भी उच्च कोटि के दर्शन की बातें करते हुए सुने जा सकते हैं। अतः बिहारी ने यदि-दो चार स्थानों पर 'दार्शनिक' बातें कह दी है, तो इनका यह अर्थ नहीं है कि वे एक बहुत उच्च कोटि के तत्त्वज्ञानी अथवा दार्शनिक थे।

उदाहरण के लिए बिहारी का निम्नलिखित दोहा लेते हैं—

मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु काँचो काँच सो।

एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित, लखियतु जहाँ।

(दोहा सं० १८१ बिहारी रत्नाकर !)

कुछ समीक्षक इस दोहे के आधार पर बिहारी को प्रतिबिम्बवादी प्रमाणित करना चाहते हैं। हमारे विचार से इस प्रकार की बात करना किसी सीमा तक पूर्वाग्रह ही कहा जायगा। बिहारी कृष्ण भक्ति में दीक्षित थे और फिर व्यावहारिक व्यक्ति थे। सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन तो एक ओर रहा, वे तो वस्तुतः मतवाद अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन को किसी सीमा तक व्यर्थ ही समझते थे। यथा—

अपनै अपनै मत लगे वादि मचावत सोर।

ज्यौं त्यौं सबकौं, सेईबौ एकै नंदकिसोर ॥^१

(बिहारी रत्नाकर दोहा से ५८१)

बिहारी ने तो निर्गुण और सगुण के मध्य की कोई विभाजक रेखा नहीं मानी है। उनकी सतसई ने दोनों का प्रतिपादन कर दिया है—

हरिभजन प्रभु दीठि दै गुन बिस्तारन काल ।

प्रगटत, निरगुन निकट रहि चंग रंग गोपाल ॥^१

इसी के साथ वह सगुण भक्ति के प्रति अपना अनुराग व्यक्त कर देते हैं—

मोहूँ दीजै मोषु ज्यौँ अनेक अधमनु दियौ ।

जौँ बाधे ही तोषु, तौ बाँधौ अपनै गुननु ॥^२

इसी प्रकार एक स्थान पर उन्होंने मुसलमान फकीरों की चर्चा भी कर दी है—

कौड़ा आँसू बूंद, किस साँकर बरुनी सजल ।

कीने बदन निमूँद, दृग-मलिंग डारे रहत ॥^३

एक स्थान पर प्रियतम के मिलन के सम्मुख वह 'मुक्ति' को भी तुच्छ बता देते हैं—

जौ न जुगति पिय मिलन की धूरि मुकुति महि दीन ।

जौ लहिए संग सजन तौ धरक नरकहूँ कीन ॥^४

बिहारी ने पूर्ववर्ती संत और भक्त कवियों की भाँति, वैराग्य, भक्ति, दीनता, करुणा, अपने पापों की चर्चा आदि के विषयों से सम्बन्धित अनेक उक्तियाँ कही हैं। वेदान्तियों की भाँति उन्होंने एक स्थान पर माया की भर्त्सना भी की है यथा—

को छूट्यौ इहि जाल परि कत कुँरग ! अकुलात ।

ज्यौँ-ज्यौँ सुरभि भज्यौ चहत त्यौँ त्यौँ उरझत जात ॥^५

उन्होंने 'नारी' की भी निन्दा कर डाली है—

१. बोहा सं० ४२८ बिहारी रत्नाकर ।

२. „ सं० २६१ „

३. „ सं० २३० „

४. „ सं० ७५ „

५. „ सं० ६७१ बिहारी रत्नाकर ।

या भव पारावार कों उत्तन्थि पार को जाइ ।

तिय छबि छाया ग्राहिनी ग्रसे बीच हीं आइ ॥^१

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि बिहारी ने दर्शनशास्त्र के कई प्रचलित और सामान्य सिद्धान्तों को अपनी कविता में प्रयुक्त किया है। इसके पीछे बहुतज्ञता-प्रदर्शन अथवा चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही मानी जानी चाहिए। ये वर्णन कहीं स्वतन्त्र रूप में लिखे गये हैं और कहीं आलंकारिक चमत्कार के लिए। निम्नलिखित दोहे में 'अलख ब्रह्म' का नाम अवश्य है, परन्तु इसकी चर्चा का हेतु यह परब्रह्म-निरूपण न होकर नायिका की कटि की सूक्ष्मता का चमत्कारपूर्ण कथन ही है—

बुधि अनुमान प्रमान श्रुति कियें नीठि ठहराइ ।

सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख लखी नाहिं जाइ ।^२

निष्कर्ष यह है कि बिहारी के दोहों में किसी दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना करना बिहारी के साथ अन्याय करना है। इन्होंने सामान्य जीवन और अनुभव की अनेक बातें अपनी व्यापक काव्य दृष्टि के कारण लिखी हैं। 'सतसई' में उपलब्ध दर्शन-सम्बन्धी उक्तियों पर इसी दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए। जो व्यक्ति जवानी की गलतियों को किसी सीमा तक क्षम्य मानते हुए,^३ सरस राग रतिरंग^४ का प्रतिपादन भी करता हो, उसे वेदान्ती बताना अथवा किसी योग-सम्प्रदाय से सम्बन्धित करना कहाँ तक उचित है।

१. दोहा सं० ४३३ बिहारी-रत्नाकर ।

२. „ सं० ६४८ „ ।

३. „ सं० ४६७ „ ।

४. तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग ।

अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ।

(दोहा सं० ६४, बिहारी रत्नाकर)

: १४ :

प्रकृति वर्णन

प्रकृति-वर्णन सामान्यतः निम्नलिखित रूपों में पाया जाता है—

(क) आलम्बन के रूप में । इसके दो भेद होते हैं (i) संश्लिष्ट योजना अथवा बिम्ब-ग्रहण के रूप में तथा (ii) परम्परा भुक्त अथवा अर्थ ग्रहण या वस्तु-परिगणन के रूप में ।

(ख) उद्दीपन विभाव के रूप में ।

(ग) उपदेश-ग्रहण के रूप में ।

(घ) उपमान के रूप में ।

(ङ) चैतन्यारोपण के रूप में अर्थात् प्रकृति पर मानवीय गुणों का आरोप किया जाए, उसको चेतन शक्ति के रूप में देखा जाए तथा इसमें अपने मन के भावों की प्रतिच्छाया का दर्शन किया जाए आदि ।

विहारी का प्रकृति-वर्णन प्रायः उद्दीपन विभावान्तर्गत ही है । कहीं-कहीं इनके वर्णन आलम्बन जैसे भी हैं । इन वर्णनों में उक्ति-वैचित्र्य एवं स्वाभाविकता का मणि-कांचन संयोग पाया जाता है । यथा—

छवि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गंध ।

ठौर ठौर झूमत झपत, भौर झौर मधु अंध ॥४६६॥

मूलतः यह दोहा शृंगार रस के अन्तर्गत उद्दीपन विभाव का ही वर्णन करता है परन्तु इसमें वर्णित प्रकृति के तत्त्वों का स्वरूप कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत हुआ है कि इसमें अभूतपूर्व मनोरमता आ गई है । इसी प्रकार दक्षिण-पवन के इस चित्र में मानवीय व्यापारों और भावों का सुखद संयोग पाया जाता है । सजीव कल्पना द्वारा अनुप्राणित यह वर्णन कितना सजीव है^१

चुवतु स्वेद मकरंद कन, तरु तरु तर बिरमाइ ।

आवत दचिउन देस तें, थक्यौ बटोही बाइ ॥३८६॥

बिहारी द्वारा किये गए आलम्बनवत् ऐसे प्रकृति-वर्णनों का विश्लेषण करते हुए डा० हरवंशलाल शर्मा ने बहुत ठीक लिखा है कि, “कुछ दोहों में प्रकृति पर मानवीय क्रीड़ाओं के आरोप के सहारे भावाभिव्यक्ति की गई है जिनमें कहीं-कहीं भाव की व्यापकता इतनी बढ़ गई है कि स्वयं प्रकृति का आधार सा प्रतीत होने लगा है और प्रकृति का प्रस्तुत चित्र आलम्बन जैसा दीख पड़ता है।
× × × भाव, कला और स्वाभाविकता का ऐसा सरस योग बहुत कम दीख पड़ता है।

निम्नलिखित दोहे के वर्ण-वर्णन में सघन घनघोर अँधेरे का वर्णन भी इसी प्रकार का है। अत्युक्तिपूर्ण होते हुए भी यह वर्णन सर्वथा स्वाभाविक है—

पावस निसि अँधियार में रह्यो भेद नहि आन ।

रात घौस जान्यो परत लखि चकई चकवान ॥४८३॥

बिहारी द्वारा किये गये इन वर्णनों की विदेशी विद्वानों ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है—“बिहारी प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में बड़े कुशल हैं—जैसे दक्षिण के मलय प्रदेश से आते हुए परिश्रान्त सुगन्धवाह मन्दगति पवन-पथिक का चित्रण जो पुण्य-रज से व्याप्त है, मार्ग की रज से नहीं, पसीने के स्थान में मकरन्द कणों से लथपथ है और वृक्षों के नीचे रुक-रुक कर विराम करता हुआ औरों को भी आराम करने का निमन्त्रण देता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है।”^१

रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति बिहारी ने भी प्रकृति का वर्णन प्रायः उद्दीपन विभावान्तर्गत ही किया है। इसके अन्तर्गत पङ्-ऋतु-वर्णन, बारहमासा, ऋतु के अनुसार विलास और ऐश्वर्य वस्तु-व्यापारों की योजना, सम्बन्धित ऋतु के त्यौहार और उत्सवों आदि का आयोजन, नायक-नायिकाओं की क्रीड़ाओं का उन्मुक्त वर्णन आदि आते हैं। इस प्रसंग के अन्तर्गत बिहारी का स्थान निर्धारित करते हुए लिखा है कि, “ऐश्वर्य की वस्तुओं और व्यापारों का केवल नाम-परिगणन परिपाटी की रूढ़ि के कारण इस प्रकार के वर्णन उद्दीपन कार्य का निर्वह भी प्रायः नहीं कर पाते। रीतिकाल की इस सामान्य प्रवृत्ति के बिहारी अपवाद है किन्तु वैचित्र्यपूर्ण ऊहा की पराव्याप्ति से वे भी बाहर न रह सके।”

१. P. 423, Vol. II, Imperial Gazetteer of India—बिहारी और उनका साहित्य से अनुवाद उद्धृत है।

षट्-ऋतु वर्णन की परम्परा का पूरा प्रभाव बिहारी पर दिखाई देता है ।
उनकी सतसई में छओं ऋतुओं के वर्णन मिलते हैं यथा—

बसन्त ऋतु—दोहा संख्या ३४६, ३५१, ३५२, ३५३, ३८८, ४७५,
४७६, ४६६, ५६४ ।

ग्रीष्म ऋतु—दोहा संख्या ४८५, ४८८, ४८९ ।

पावस ऋतु—दोहा संख्या ६६, ४०२, ४०४, ४८५, ४८६, ५४६, ५५६,
५६२, ५६३ ।

शरद ऋतु—दोहा संख्या २६१, ४३०, ४८२, ४८७ ।

हेमन्त ऋतु—दोहा संख्या १४६, १७१, ४८६, ४६२, ४६७ ।

शिशिर ऋतु—दोहा संख्या ३४४ ।

तत्कालीन परम्परा के अनुसार बिहारी ने बसन्त के उत्पातों का भी वर्णन
किया है—

फिर घर को नूतन पथिक, चले चकित चित भागि ।

फूल्यो देखि पलास बन, समुहैं समुभि दवागि ॥५६४॥

दिसि दिसि कुसुमित देखिए उपवन-विपिन-समाज ।

मनहुँ बियोगिनि को कियो सर-पिंजर ऋतुराज ॥३४६॥

सारांश यह है कि बिहारी ने अधिकांश दोहों में प्रकृति के वैभव को वियो-
गियों की दृष्टि से देखा है । बिहारी ने एक-दो स्थलों पर मानवीकरण के आधार
पर भी प्रकृति का वर्णन किया है । यथा—

नाहिन ये पावक प्रवल, लुएँ चलति चहुँ पास ।

मानो बिरह बसन्त के, ग्रीष्म लेत उसास ॥४८५॥

यहाँ ग्रीष्म रूपी नायिका को बसन्त रूपी नायक के विरह में उसासें लेते
हुए दिखाया है । इसी प्रकार शरद् को वीर राजा के रूप में चित्रित किया
गया है । (४८२)

पावसान्तर्गत हिंडोला-वर्णन की लीक भी बिहारी ने पीटी है । (६६)

एक दो स्थानों पर इन्होंने उपदेश-ग्रहण की प्रवृत्ति भी दिखाई है । (४८६)
इनकी अन्योत्तियाँ तो प्रसिद्ध हैं हीं ।

इनकी प्रिय ऋतुएँ दो ही हैं—वसन्त और पावस। शेष का केवल परम्परा-निर्वाह के लिए नामोल्लेख भर किया है।

अप्रस्तुत-विधान से तो इनके दोहे भरे पड़े हैं। इन्होंने प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत कवि प्रसिद्ध समस्त उपमानों का प्रचुर प्रयोग किया है।^१

बारह-मासे की बंधी हुई लीक पर बिहारी ने प्रकृति का वर्णन नहीं किया है। फिर भी इस शैली पर भी कुछ दोहे मिल जाते हैं। बिहारी ने चैत्र (५१६), ज्येष्ठ (५२, ३६६) अगहन (४६५), पौष (१४६), माघ (३४२, ४१६) तथा फाल्गुन (३४६, ३५१, ३५३) का वर्णन किया है। शेष महीनों का वर्णन उनके काव्य में नहीं मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने बारह मासा-वर्णन की परम्परा के निर्वाह की ओर ध्यान नहीं दिया था।

बिहारी के प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध में डा० गणपतिचन्द्र गुप्त का यह निष्कर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि, “हम कह सकते हैं कि सतसई में प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी दोहों की संख्या न्यून होते हुए भी उसमें तत्कालीन साहित्य की सभी प्रवृत्तियों का समावेश मिलता है। साथ ही उसमें कुछ मौलिक प्रवृत्तियों का (मानवीकरण जैसा) विकास भी मिलता है। शृंगार रस के उद्दीपन की दृष्टि से भी उनका प्रकृति-वर्णन सफल कहा जा सकता है।”

बिहारी के प्रकृति-वर्णन का विवेचन करने के पश्चात् डा० हरवंशलाल शर्मा के यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि, “बिहारी का प्रकृति-वर्णन प्रायः उद्दीपन के रूप में है, उस युग में प्रचलित वैचित्र्य-प्रवृत्ति की भी उस पर छाप है, उन्मुक्त आलम्बन के रूप में प्रकृति को उन्होंने नहीं देखा फिर भी उनके प्रकृति विषयक कतिपय संक्षिप्त चित्र बड़े मार्मिक हैं।”

बिहारी और सेनापति के प्रकृति-वर्णन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डा० शर्मा ने लिखा है कि, “रीति परम्परा के स्वतन्त्र कवियों में बिहारी और सेनापति प्रमुख हैं, प्रकृति के उद्दीपन चित्रों के अतिरिक्त कुछ स्वाभाविक चित्र भी इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं। × × × बिहारी की रुचि प्रभावात्मकता

की ओर अधिक है और सेनापति की रूपात्मकता की ओर । × × × दोनों ही कवियों ने प्रकृति को भावों की पृष्ठ भूमि के रूप में भी प्रस्तुत किया है ।

× × × परम्परा के निर्वाह का आग्रह सेनापति में (अपेक्षाकृत) अधिक है । × × × सेनापति की अपेक्षा बिहारी में कल्पना का संयम है, जबानी जमा खर्च की उनकी कम आदत है ।”

: १५ :

कलापक्ष

[भाषा, शैली, अलंकार, छन्द, सूक्ति, अनुभाव]

(क) भाषा—बिहारी ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना की है। ब्रजभाषा एक अत्यन्त प्राचीन काव्य-भाषा-कुल की भाषा है और इसका क्षेत्र बहुत ही व्यापक रहा है अतः विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं के शब्दों एवं प्रयोगों का उसमें मिल जाना एक स्वाभाविक बात है। इसी प्रकार मुसलमानी राजत्व काल में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का उसमें समावेश हो जाना भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया थी। पृथ्वीराजरासो में ही ब्रजभाषा के बारे में लिखा है कि—

संस्कृत प्राकृतं चैव राजनीतिं नवं रसं ।

षड्भाषा पुराणं च कुराणं कथितं मया ॥

बड़े-बड़े कवियों की भाषा की परीक्षा करने के पश्चात् बिहारी दास ने लिखा—

तुलसी गंग दुवौ भए सुकबिन के सरदार ।

इनके काव्यन में मिली भाषा बिबिध प्रकार ॥

(काव्य निर्णय १-१७२)

ब्रजभाषा के युद्ध रूप का प्रयोग बहुत कम कवियों में दिखाई देता है। उसमें खड़ी बोली तथा अवधी का मिश्रण अनेक कवियों में पाया जाता है। प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि, “ब्रजभाषा के शुद्ध रूप का प्रयोग करने वाले बहुत थोड़े कवि मिलते हैं। सूरदासजी की भाषा भी शुद्ध ब्रजभाषा नहीं है। इसे चलती भाषा या सामान्य काव्य-भाषा मानना चाहिए। बिहारी की भाषा भी चलती ब्रजभाषा कही जा सकती है, पर साथ ही वह साहित्यिक भी है। ब्रजभाषा का शुद्ध रूप यदि किसी कवि में ठिकाने का मिलता है तो वह बहुत-कुछ घनानंद में ही मिलता है। उनकी

भाषा में पूर्वी प्रयोग एकदम नहीं हैं या एकाध ही हैं। पर बिहारी में कई पूर्वी प्रयोग मिलते हैं। सर्वनाम के 'जेहि' 'केहि' आदि प्रयोग बिहारी में बराबर मिलते हैं।" मिश्रबन्धु ने बिहारी की भाषा के विषय में लिखा है कि, "इस महाकवि ने ब्रजभाषा में कविता की है परन्तु फिर भी इसने कई भाषाओं के शब्दों को यत्रतत्र बहुतायत से व्यवहार किया है। किसी भाषा का भी शब्द मिले और यदि उत्तम हो तो उसे काम में लाने में यह महाशय संकोच नहीं करते थे। यदि इनके शब्दों की गणना की जाए, तो वह बहुत ऊँची निकलेगी।"

बिहारी की भाषा का शब्द-भण्डार निम्नलिखित प्रकार है—

- (क) इनकी भाषा में अनेक अवधी के प्रयोग मिलते हैं—लीन, कीन, दीन आदि (२४३); क्रिय (४१६), लजियात (३२)।
- (ख) खड़ी बोली के वृद्धत और क्रियापद का प्रयोग पाया जाता है—दी (४४८, ५८६), जुदी (६१६)।
- (ग) बुंदेल खण्डी शब्दों के प्रयोग तो बिहारी की कविता में भरे पड़े हैं। स्यों (१६६, ४४५)। लखबी, करबी पायबी आदि प्रयोग बुंदेल खण्डी के हैं। इनको ब्रज के दक्षिण में भी बोला जाता है। अतः इनको ब्रजभाषा के अंतर्गत भी माना जा सकता है। परन्तु कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो खास बुंदेली के ही हैं—घैरू (४५८), कोद (५४६), गीधे, बीधे आदि।
- (घ) बिहारी ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग तीनों ही रूपों में किया है—
 - (i) तत्सम शब्द-अद्वैतता (१३), अमित (१७८), आसव (६४६) निदाघ (२४४), घनमार (५२६) आदि।
 - (ii) अर्ध तत्सम शब्द-प्रगति (३६), उरज (१११), बासर (२२७), संदेस (६०), हरित (१)।
 - (iii) तद्धव शब्द—अनत (११५), कोयन (५८), घाम (१२७), चख (१२), सौधे (७)।
- (ङ) अरबी-फारसी के अनेक शब्दों का प्रयोग बिहारी ने निस्संकोच किया है—इजाफा (२), कबूल (५१), नेजा (३), पायन्दाज (४११), हमाम (२८१),
- (च) बिहारी ने अप्रचलित ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है—सैल (१७६), सलोटा (६०६), करवर=चीता (५०), अकस (४१७), कालबूत=साँचा आदि।

(छ) बिहारी ने इच्छानुसार कुछ शब्दों से मनमानी भी की है और नए शब्द भी गढ़ लिए हैं—अ+मिल=अमिल ।

बिहारी ने मारक, साधक आदि शब्दों के वजन पर 'उड़ायक' (५७) गढ़ लिया है, 'मिठास' के सादृश्य पर प्रकाश के अर्थ में 'उजारू' (७३) शब्द का प्रयोग किया है ।

(ज) दो भिन्न भाषाओं के प्रकृति प्रत्यय और शब्दों के योग या व्याकरण से प्रभावित द्विज अथवा संकर शब्दों का भी बिहारी की भाषा में समावेश हुआ है । जैसे सिरताज (४) = सिर+ताज (मुसलमानी शब्द) छाँहगीर (२३१) छाँह (प्रवृत्ति+गीर (प्रत्यय, मुसलमानी राहगीर की भाँति) ।

(झ) कहीं-कहीं तुक बैठाने के लिए ब्रजभाषा के क्रिया पद से भी बलात् संस्कृत का कृत प्रत्यय (क्त) लगाकर उसके अनुसार रूप बना लिया है, झरित (३८७), अधखुलित (६५२) ।

(ञ) इस प्रकार बिहारी ने कहीं-कहीं कृत्प्रत्ययान्त (४८१) तथा समासान्त और तद्धितान्त (३४७) रूपों का भी प्रयोग किया है ।

इतना सब होने पर भी अन्य कवियों की अपेक्षा बिहारी ने शब्दों के साथ बहुत कम स्वच्छन्दता बरती है, बहुत कम तोड़-मरोड़ की है । डा० शर्मा लिखते हैं, "मिश्रबन्धु ने बिहारी के संक्रोन और सोनजाय शब्दों को भ्रमवश 'संक्रान्ति' और 'सोनजुही' से गढ़े हुए मानकर आपत्ति करते हुए बिहारी को शब्दों के अंग-भंग करने का बड़ा भारी दोष लगाया है । परन्तु वास्तव में 'संक्रोन' का सम्बन्ध 'संक्रमण' से और 'सोनजाय' का 'स्वर्णजाति' से है ।"

इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन बहुत ही महत्वपूर्ण एवं निर्णयात्मक प्राय है । 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अन्तर्गत उन्होंने लिखा है कि, "बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है । वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है । यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है । ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़-मरोड़ कर विकृत करने की आदत बहुतांश में पाई जाती है । 'भूषण' और 'देव' ने शब्दों का बहुत अंग-भंग किया है और कहीं-कहीं गढ़न्त शब्दों का व्यवहार किया है । बिहारी की भाषा इस दोष से भी बहुत कुछ मुक्त है । दो एक स्थल पर ही 'स्मर' के लिए 'समर' 'ककै' ऐसे कुछ विकृत रूप मिलेगे ।"

जिन लेखकों ने बिहारी पर 'शब्दों के अंग-भंग' का दोषारोपण किया है, उनके द्वारा प्रस्तुत उदाहरणों का समाधान करते हुए शुक्लजी ने लिखा है कि, "जो यह भी नहीं जानते, × × × । यदि पचासों शब्द उनकी समझ में न आएँ तो बेचारे बिहारी का क्या दोष है ?"

सारांश रूप में बिहारी की भाषा की विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार हैं—

- (१) बिहारी की कविता की भाषा चलती हुई ब्रजभाषा है । इसका रूप साहित्यिक है ।
- (२) बिहारी ने संस्कृत के तत्सम, अर्द्धतत्सम तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त खड़ी बोली, बुन्देलखण्डी और अवधी के शब्दों एवं प्रयोगों का सफल समावेश किया है । इनकी भाषा में ग्रामीण एवं अप्रचलित शब्द भी पाए जाते हैं । इनके अतिरिक्त इन्होंने अरबी-फ़ारसी के शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया है ।^१
- (३) इन्होंने अन्य कवियों की अपेक्षा शब्दों के साथ 'मनमानी' बहुत कम की है ।
- (४) इनकी भाषा सर्वत्र व्यवस्थित है ।
- (५) बिहारी का शब्द-चयन निःसन्देह अद्वितीय है । 'इनके शब्द सुप्रयुक्त हैं ।' (रत्नाकर)
- (६) बिहारी ने समासों का प्रयोग बड़ी ही कुशलता के साथ किया है ।
- (७) भाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार है ।

१. इस सम्बन्ध में डा० हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि, "उन्होंने अपनी भाषा की सज्जा के लिए जहाँ संस्कृत के अनेक शब्दों को जड़ा है वहाँ परम्परागत काव्य भाषा के घसे-पिटे एवं बोलचाल से उठे पुराने शब्दों को भी रहने दिया और अवधी, बुन्देलखण्डी, खड़ी बोली आदि भाषाओं के अतिरिक्त मुसलमानी शब्दों का भी निःसंकोच स्वागत किया ।"

बिहारी के द्वारा प्रयुक्त 'लखबी', जानबी तथा प्यौसाल' शब्दों को पं० पद्मसिंह शर्मा ने 'ब्रज' का ही माना है, तथा इनको बुन्देलखण्ड का बताना 'शृगाल—रोदन न्याय' कहा है (पृ० सं० २४६ से २४९, बिहारी की सतसई भाग १, चतुर्थ संस्करण ।)

- (८) बिहारी ने अपनी भाषा के अनुकूल साधन के रूप में मुहावरों के सफल प्रयोग किए हैं—आँखिन आँखि लगी रहै, आँखें लागति नाहि । (६२) । कतिपय अन्य मुहावरे इस प्रकार हैं—कान की पातरी तथा बहाऊ बान (१४) पानी में कौ लोनु (१८) मुँह चाड़ि (२६), लट्ठ होय (४७१), इत्यादि । कहीं-कहीं मुहावरों की माला-सी पिरो दी है—

मूँड चढ़ाएऊ रहै पर्यौ पीठि कच-भार ।

रहै गरै परि, राखिबौ तऊ हियें पर हार ॥६२॥

इस बारे में विद्वान एकमत हैं कि बिहारीलाल मुहावरों के बादशाह थे ।

- (९) बिहारी की उत्क्रांति में माधुर्य, एवं प्रसाद गुणों का स्वाभाविक विकास पाया जाता है । शृंगार के वर्णन में ओज प्रधान वर्गों की कटुध्वनि भी कहीं-कहीं सुनाई पड़ जाती है—

लटक लटक लटकत चलत, डटत मुकुट की छाँह ।

चटक भर्यौ नट मिलि गयौ, अटक भटक-बट माँह ॥१६२॥

- (१०) ध्वन्यात्मक शब्दों के द्वारा बिहारी की भाषा सजीव चित्र उपस्थित करने में सर्वथा समर्थ है । (३८८, ५४३)

- (११) वक्रोक्ति का प्रयोग बिहारी ने बहुत स्वाभाविक रूप में किया है ।

- (१२) लम्बे समासों का प्रयोग, लिंग विपर्यय, शब्दों की विकृति, संकर प्रयोग आदिक कतिपय दोष बिहारी की भाषा में पाये जाते हैं ।

निष्कर्ष रूप में बिहारी की भाषा के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते हैं । उनके द्वारा शब्दों की यत्किंचित तोड़-मरोड़ की आलोचना करने वाले मिश्रबन्धु ने भी उनके भाषा-सौष्ठव को स्वीकार किया है, “इस कविरत्न की बोलचाल बहुत ही स्वाभाविक है, इन महाकवि ने इबारत आराई भी खूब की है ।”

आचार्य शुक्ल के मत का उल्लेख हम अन्यत्र कर ही चुके हैं । उनके मतानुसार बिहारी जैसी व्यवस्थित भाषा बहुत कम कवियों में पाई जाती है ।

आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है कि, “बिहारी-सतसई की भाषा सर्वश्रेष्ठ, परम रसीली है । उसे छोड़कर जो दूसरी भाषा पढ़ते हैं, उनसे सहृदयता मचल-मचल कर कहती है—“जीभ निबोरी क्यों लगै, बौरी चाँखि अंगूर ।”

समन्वय पाया जाता है। इसे हम बिहारी की प्रतिनिधि शैली कह सकते हैं। साम्यमूलक एवं वैषम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग हम शैली में स्वयमेव हो गया है यथा—

क्रियाविदग्धा का यह वर्णन—

लखि गुरुजन बिच कमल सौं सीसु छुवायो स्याम।

हरि सनमुख करि आरसी, हिये लगाई बाम ॥३४॥

इसी प्रकार इन्होंने अनेक बातों का वर्णन वडे ही सीधे-साधे किन्तु सरस और मर्मस्पर्शी ढंग से किया है जिससे भाव की पूर्ण अनुभूति हो जाने के साथ-साथ वस्तु का सजीव चित्र भी उपस्थित हो जाता है। यथा—

गोरी गदकारी परे हँसत, कपोलनु गाड़।

कैसी लसति गँवारि यह सुन किरवा की आड़ ॥२०८॥

डा० हरबंशलाल शर्मा के मतानुसार “इस प्रकार की शैली अपनी चमक-दमक के आकर्षण से पाठक को उलझाना पसन्द नहीं करती, अपितु गम्य वस्तु, रस, भाव तक जाने में सहायता प्रदान करती है।” अलंकार विधान की दृष्टि से इसमें ‘स्वभावोक्ति’ अलंकार की छटा दिखाई देती है परन्तु सामान्य रूप से इन उक्तियों का सौन्दर्य उनके व्यंग्य में ही निहित है। हम इसे ‘व्यंजना-प्रधान अनलंकृत शैली’ कहते हैं। बिहारी की कविता में प्रयुक्त तीसरी शैली है ‘कल्पना प्रधान उहात्मक शैली।’ इसमें “दूर की कौड़ी लाने के लोभ में भावरत्नों की उपेक्षा की गई है और हृदय में गम्भीर घाव करने वाले तीर से आँखें चँधियाने का ही काम लिया गया है—

पलनु प्रकटि, बरुनोनु बड़ि नहि कपोल ठहराति ।

अँसुवा परि छतियाँ छिनकु छनछनाइ छिपि जाति ॥६५६॥^१

बिहारी ने इस शैली का अपेक्षाकृत कम ही प्रयोग किया है। और यह अच्छा ही हुआ।

प्रसाद गुण के समान इनकी शैली में वक्रकथन एवं वाग्वैदग्ध्य के सर्वत्र-दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से बिहारी की रचना किसी भी कवि के समकक्ष रखी जा सकती है। इनकी वाणी स्वाभाविक है परन्तु वाग्वैदग्ध्य के कारण बड़ी ही आकर्षक है। विशेषता यह है कि बहुत कम स्थलों पर शैली प्रयत्नप्रसून है।

तथा उसमें एक-दो अवसरों पर ही क्लिष्ट कल्पना का आश्रय ग्रहण किया गया है। प्रो० विश्वसाथ प्रसाद मिश्र के कथनानुसार, “बिहारी में कलापक्ष के भीतर वाग्वैदग्ध बहुत सच्चा पाया जाता है, इसलिए इनकी कविता लोगों को मस्त कर देती है।” निम्नलिखित दोहों में बिहारी का वाग्वैदग्ध अर्थद्योतक और रचना की कसावट का कार्य एक साथ करता है—

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यों ज्यों पियत अघाड़।

सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाई ॥४१७॥

डा० हरवंश के मतानुसार, “वास्तव में बिहारी की शैली की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसके चमत्कारपूर्ण होने में ही निहित है।” प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी लिखा है कि, “बिहारी की उक्तियों की यह विदग्धता, उनकी यह वचनभंगि, उनका यह वैचित्र्य ही लोगों को लुभाया करता है। यही उनका बिहारीत्व है जो उनका और कवियों से अलग करता है और × × × जिसके कारण दूसरे कवियों के ऐसे ही दोहों को देख कर लोग कह दिया करते हैं कि यह रचना बिहारी की सी जान पड़ती है।”

(ग) अलंकार-विधान—मिश्रवन्धु ने बिहारी के अलंकार-विधान के सम्बन्ध में लिखा है कि, “उस कवि ने अतिशयोक्ति की टाग तोड़ दी है विशेषतया कोमलता, उजलापन और विग्रह के वर्णनों में।” उस महाकवि ने उपमायें बड़ी ही उत्तम और अनोखी खोज-खोज कर दी हैं।^१ × × × इन्होंने सैकड़ों नये रूपक और उपमायें कही हैं। जहाँ यह पुरानी उपमायें या रूपक भी कहते हैं वहाँ भी अपनी आत्मीयता रख देते हैं।^३

बिहारी की अलंकार-योजना वस्तुतः बहुत ही श्रेष्ठ है। विशेषतया यह है कि अलंकारों के कारण कहीं भी ‘भाव’ दब नहीं गया है अथवा अलंकार कहीं भी अनावश्यक एवं बोझिल नहीं मालूम पड़ते हैं। आचार्य शुक्ल का कथन दृष्टव्य है,—“अलंकारों की योजना इस कवि ने बड़ी निपुणता से की है। किसी किसी दोहे में कई अलंकार उलझे पड़े हैं, पर उनके कारण कहीं भद्दापन नहीं

१. देखें दोहा सं० ६६, २३४, २४१, ४२६, ४२८, ४३४, ४४८, ४७७।

२. देखें दोहा सं० १७, ४३, ६०, ११२, १२८, १६२, २२२, ३१०, ४४४, ५४२, ६४०, ६६७।

३. देखें दोहा सं० १०५, ५७६।

समन्वय पाया जाता है। इसे हम बिहारी की प्रतिनिधि शैली कह सकते हैं। साम्यमूलक एवं वैषम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग हम शैली में स्वयमेव हो गया है यथा—

क्रियाविदग्धा का यह वर्णन—

लखि गुरुजन बिच कमल सों सीसु छुवायो स्याम।

हरि सनमुख करि आरसी, हिये लगाई बाम ॥३४॥

इसी प्रकार इन्होंने अनेक बातों का वर्णन बड़े ही मीधे-साधे किन्तु सरस और मर्मस्पर्शी ढंग से किया है जिससे भाव की पूर्ण अनुभूति हो जाने के साथ-साथ वस्तु का सजीव चित्र भी उपस्थित हो जाता है। यथा—

गोरी गदकारी परै हँसत, कपोलनु गाड़।

कैसी लसति गँवारि यह सुन किरवा की आड़ ॥२०८॥

डा० हरबंशलाल शर्मा के मतानुसार “इस प्रकार की शैली अपनी चमक-दमक के आकर्षण से पाठक को उलझाना पसन्द नहीं करती, अपितु गम्य वस्तु, रस, भाव तक जाने में सहायता प्रदान करती है।” अलंकार विधान की दृष्टि से इसमें ‘स्वभावोक्ति’ अलंकार की छटा दिखाई देती है परन्तु सामान्य रूप से इन उक्तियों का सौन्दर्य उनके व्यंग्य में ही निहित है। हम इसे ‘व्यंजना-प्रधान अनलंकृत शैली’ कहते हैं। बिहारी की कविता में प्रयुक्त तीसरी शैली है ‘कल्पना प्रधान उहात्मक शैली।’ इसमें “दूर की कोड़ी लाने के लोभ में भावरत्नो की उपेक्षा की गई है और हृदय में गम्भीर घाव करने वाले तीर से आँखें चंधियाने का ही काम लिया गया है—

पलनु प्रकटि, बरुनोनु बड़ि नहि कपोल ठहराति ।

अंसुवा परि छतियाँ छिनकु छनछनाइ छिपि जाति ॥६५६॥’

बिहारी ने इस शैली का अपेक्षाकृत कम ही प्रयोग किया है। और यह अच्छा ही हुआ।

प्रसाद गुण के समान इनकी शैली में वक्रकथन एवं वाग्वैदग्ध के सर्वत्र-दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से बिहारी की रचना किसी भी कवि के समकक्ष रखी जा सकती है। इनकी वाणी स्वाभाविक है परन्तु वाग्वैदग्ध के कारण बड़ी ही आकर्षक है। विशेषता यह है कि बहुत कम स्थलों पर शैली प्रयत्नप्रसून है

तथा उसमें एक-दो अवसरों पर ही क्लिष्ट कल्पना का आश्रय ग्रहण किया गया है। प्रो० विश्वसाथ प्रसाद मिश्र के कथनानुसार, “बिहारी में कलापक्ष के भीतर वाग्वैदग्ध बहुत सच्चा पाया जाता है, इसलिए इनकी कविता लोगों को मस्त कर देती है।” निम्नलिखित दोहों में बिहारी का वाग्वैदग्ध अर्थद्योतक और रचना की कसावट का कार्य एक साथ करता है—

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौ ज्यौं पियत अघाड़।

सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाई ॥४१७॥

डा० हरवंश के मतानुसार, “वास्तव में बिहारी की शैली की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसके चमत्कारपूर्ण होने में ही निहित है।” प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी लिखा है कि, “बिहारी की उक्तियों की यह विदग्धता, उनकी यह वचनभंगि, उनका यह वैचित्र्य ही लोगों को लुभाया करता है। यही उनका बिहारीत्व है जो उनको और कवियों से अलग करता है और × × × जिसके कारण दूसरे कवियों के ऐसे ही दोहों को देख कर लोग कह दिया करते हैं कि यह रचना बिहारी की सी जान पड़ती है।”

(ग) अलंकार-विधान — मिश्रवन्धु ने बिहारी के अलंकार-विधान के सम्बन्ध में लिखा है कि, “इस कवि ने अनिश्चोक्ति की टांग तोड़ दी है विशेषतया कोमलता, उजलापन और विग्रह के वर्णनों में।” उस महाकवि ने उपमायें बड़ी ही उत्तम और अनाखी खोज-खोज कर दी हैं।^१ × × × इन्होंने सैकड़ों नये रूपक और उपमायें कही हैं। जहाँ यह पुरानी उपमायें या रूपक भी कहते हैं वहाँ भी अपनी आत्मीयता रख देते हैं।^३

‘बिहारी की अलंकार-योजना वस्तुतः बहुत ही श्रेष्ठ है। विशेषतया यह है कि अलंकारों के कारण कहीं भी ‘भाव’ दब नहीं गया है अथवा अलंकार कहीं भी अनावश्यक एवं बोझिल नहीं मालूम पड़ते हैं। आचार्य शुक्ल का कथन दृष्टव्य है,—“अलंकारों की योजना इस कवि ने बड़ी निपुणता से की है। किसी किसी दोहे में कई अलंकार उलझे पड़े हैं, पर उनके कारण कहीं भद्दापन नहीं

१. देखें दोहा सं० ६६, २३४, २४१, ४२६, ४२८, ४३४, ४४८, ४७७।

२. देखें दोहा सं० १७, ४३, ६०, ११२, १२८, १६२, २२२, ३१०, ४४४, ५४२, ६४०, ६६७।

३. देखें दोहा सं० १०५, ५७६।

आया है। 'असंगति' और विरोधाभास की ये मार्मिक और प्रसिद्ध उक्तियाँ कितनी अनुठी हैं—

दृग अरुक्षत, दूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति ।

परति गाँठि दुरजन-हिऐ, दई नई यह रीति ॥२६३॥

तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग ।

अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग ॥६४॥

दो एक जगह व्यंग्य अलंकार भी बड़े अच्छे ढंग से आये हैं। इस दोहे में रूपक व्यंग्य है—

करे चाह सों चुटकि कै खरे उड़ौहैं मन ।

लाज नवाए तरफरत करत खूँद सी नैन ॥५४२॥

डा० रामनागर त्रिपाठी ने 'बिहारी मीमांसा' के अन्तर्गत बिहारी के चमत्कार विधान तथा रसाभिव्यंजना-मूलक, वस्तु-व्यंजनामूलक व्यंग्यार्थोपस्कारक अलंकारों की विवेचना की है। अनेक उदाहरण प्रस्तुत करके उन्होंने बिहारी के अलंकार-सौष्ठव का स्पष्टीकरण किया है, और सधेप में उनका निष्कर्ष यह है कि, "बिहारी की रचना अलंकार की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है और जितना ही इस पर विचार किया जाता है, उतने ही रहस्य प्रकट होते हैं। किसी-किसी दोहे में मात-सात आठ-आठ अलंकार उलभे हुए हैं। अलंकारों की संसृष्टि और सकर सर्वथा दर्शनीय है। और बिहारी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अलंकार प्रयोग में विशेष अभिरुचि लेते हुए भी परिणाम का बहुत अधिक ध्यान रखा गया है। अलंकार कही रस पर हावी नहीं हुए हैं। यही बिहारी की सफलता है।"

सारांश यह है कि बिहारी का प्रत्येक दोहा अलंकार के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। "सभी दोहे चमत्कारपूर्ण हैं तथा बिहारी की प्रतिभा के परिचायक हैं।"

बिहारी के अलंकार-विधान के सम्बन्ध में डा० हरवलाल शर्मा ने लिखा है कि, "उनकी रचना में लगभग समस्त अलंकारों के उदाहरण मिल जायेंगे। पर उनका मुख्य उद्देश्य रसास्वादन ही है। कुछ गिनी-चुनी उक्तियों को छोड़कर उनके अलंकार सर्वत्र भाव को तीव्रता प्रदान करते हैं।"

इस विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' में लिखा है कि, "रीतिकाल के कवियों के शब्दालंकार × × × काव्य के घटिया प्रभाव

को उत्पन्न करके रह जाते हैं। × × × बिहारी ने अर्थ की रमणीयता का ध्यान बराबर रक्खा है। इसीलिए उनके शब्दालंकार रसोद्वेग के सहायक होकर आते हैं। वायु के संचरित होने की ध्वनि कुंजर के आगमन के समान प्रतीत होती है—

• रनित-भृङ्ग-घंटावली, झरित दान मधुनीरु ।
मंद-मंद आवतु चल्यौ, कुंजर-कुंज-समीरु ॥३८८॥

एक दो स्थलों पर बिहारी ने युद्ध चमत्कार-प्रदर्शन की दृष्टि से अलंकारों की योजना की है। यथा—

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन ।

रति पाली आली अनत, आये बनमालीन ॥११५॥

डा० जगन्नाथ 'रत्नाकर' ने कविवर 'बिहारी' में बिहारी के अनुप्रासों पर सविस्तार विचार किया है। बिहारी और उनका साहित्य के अन्तर्गत डा० हरवंशलाल शर्मा ने तथा प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'बिहारी की वाग्विभूति' में बिहारी की अलंकार-योजना और उनके अप्रस्तुत-विधान पर सविस्तार विचार किया है। इनके द्वारा उपलब्ध निष्कर्ष इस प्रकार है—“उन्होंने अलंकारों को प्रायः साधन रूप में ही स्वीकृत किया है और अप्रस्तुत का विधान करने समय चमत्कार की अपेक्षा रूप, गुण, भाव एवं वस्तु का ही अधिक ध्यान रखा है। × × × एक सफल रीतिकार की भांति उन्होंने सभी प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत कर दिए हैं।” (डा० हरवंशलाल शर्मा)।

×

×

×

“बिहारी अलंकार शास्त्र में प्रवीण थे। उन्होंने अपने बहुत से दोहों में अलंकारों को इतना स्पष्ट दिखलाया है कि अलंकार के लक्षण-ग्रन्थ लिखने वालों के उदाहरण भी उतने साफ नहीं मिलते। × × × अलंकारों की सफाई भी बिहारी को रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों की ओर ही खींचने वाली है।”

स्थिति यह है कि बिहारी के चमत्कार-प्रिय तथा भाव-प्रवण दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों के रंजनार्थ अलंकार-विधान किया है। इसी कारण यह कहा जाता है कि, “बिहारी जैसी प्रतिभा हिन्दी के बहुत कम कवियों में देखी जाती है।”

बिहारी के अलंकार-विधान की सफलता को देखकर कुछ टीकाकारों को यह भ्रम हो जाना स्वाभाविक था कि बिहारी की सतसई अलंकारनिरूपक

रीतिग्रन्थ है। × × × परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। बिहारी न तो अलंकार-वादी थे और न उन्होंने अलंकारों का निरूपण ही किया। बिहारी ने स्वच्छन्द रूप में ही अलंकारों का प्रयोग किया है। डा० विजयेन्द्र स्नातक का यह कथन दृष्टव्य है—“उनके प्रत्येक दोहे में उक्तिवैचित्र्य के चमत्कार के साथ अलंकार की सुन्दर योजना हुई है। चमत्कार विधान के लिए कहीं अलंकार का सहारा लिया गया है और कहीं अलंकार को ही चमत्कार के भीतर समाविष्ट कर लिया गया है। कहीं-कहीं एक ही दोहे में अलंकारों की संसृष्टि और संकर ने सौन्दर्य विधान करने में अनुपम निपुणता का परिचय दिया है।” (पृ० सं० ५२३, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम संस्करण)।

(घ) छन्द योजना—बिहारी ने दोहा छन्द का ही प्रयोग किया है। इनके दोहों की रचना के सम्बन्ध में मिश्रबन्धु का मत है कि, “इनके दोहाओं में उत्तम छन्दों की गणना करनी कठिन है। × × × कोई एक भी दोहा ऐसा नहीं है जो खराब कहा जा सके। उत्तम छन्दों के बाहुल्य से ही यह ग्रन्थ रामायण के पीछे सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है।”

इनके दोहा-विधान के विषय में आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, “जिम कवि में कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ भाषा की समामशक्ति जितनी अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा। यह क्षमता बिहारी में पूर्णरूप में विद्यमान थी। इसी में वे दोहे ऐसे छोटे छन्द में इतना रंग भर सके। इनके दोहे क्या है रस के छोटे-छोटे दोहे हैं।”

डा० हरवंशलाल शर्मा के मतानुसार बिहारी के दोहों में वे समस्त लक्षण पाये जाते हैं जो रहीम ने निम्नलिखित दोहे के अनुसार उसके लिए आवश्यक माने हैं—

दीर्घ दोहा अरथ के आखर थोरे आहिं ।

ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिट कूदि चलि जाहिं ॥३६२॥

(रहीम दोहावली)

रत्नाकरजी ने अपने ग्रन्थ ‘कविवर बिहारी’ में दोहा छन्द के ऊपर सविस्तार विचार किया है। उन्होंने वर्ण गणना के अनुसार दोहों के २१ प्रकार लिखे हैं। अन्त में उनका निष्कर्ष यह है कि, “भ्रामर तथा शरभ को छोड़कर शेष १९ भेदों के दोहे बिहारी की सतसई में मिलते हैं।”

(ङ) सूक्ति-कथन—बिहारी ने अनेक सूक्तियाँ भी कहीं हैं। इनमें अधिकांश नीति सम्बन्धी है केवल शब्द-वैचित्र्य के लिए बिहारी ने बहुत कम सूक्तियाँ कहीं हैं। अधिकांश में वर्णन-वैचित्र्य है।^१

कनक कनक तं सौगुनी मादकता अधिकाय ।

वह खाए बौरात नर, यह पाए बौराय ॥१६२॥

बिहारी ने धार्मिक सूक्तियाँ भी लिखी हैं जिनमें वैराग्य, गुरु-भक्ति, भगवद् भक्ति, नाम-जप, ईश्वर-प्रियाराम, बाह्याडम्बर का त्याग, कपट का परित्याग, सत्संग महिमा, एक रमता आदि के उपदेश हैं। बिहारी ने एक स्थल पर कामिनी की निन्दा भी की है। (४३३)।

बिहारी ने कुछ आर्थिक सूक्तियाँ भी कहीं हैं।^२ इनके अतिरिक्त बिहारी ने गुणों के महत्त्व, कुसंग-निन्दा, आदि विविध विषयक सूक्तियाँ लिखी हैं। बिहारी के सूक्ति-काव्य का निष्कर्ष डा० रामसागर त्रिपाठी के शब्दों में इस प्रकार है,—“इन्होंने जीवन के सुखद तथा कटु दोनों प्रकार के अनुभव न किये थे और उन अनुभवों के द्वारा उन्होंने अपने पाठकों के सामने एक प्रशस्त जीवन रखने की चेष्टा की।”

बिहारी की सूक्तियाँ पाँच भागों में विभक्त की जा सकती हैं—(i) धार्मिक (वैराग्यपरक), (ii) आर्थिक (iii) लोक-व्यवहार परक (iv) शृंगारिक (कामपरक) तथा (vi) प्रशस्तपरक ।

सूक्तियों में तथ्योक्तियाँ भी हैं और अन्योक्तियाँ भी। इनकी प्रशस्तिपरक सूक्तियाँ बहुत हल्की हैं। कारण स्पष्ट है। खुशामद में इनका चित्त रमता नहीं था।

(च) अनुभाव-योजना—‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बिहारी के काव्य-कौशल का विवेचन करते हुए लिखा है कि, “बिहारी की रस-व्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों के विधान में दिखाई पड़ता है। अधिक स्थलों पर तो इनकी योजना की निपुणता और उक्ति-कौशल के दर्शन होते हैं, पर इस विधान में इनकी कल्पना की मधुरता झलकती है। अनुभावों

१. देखें दोहा सं० ५१, ८१, १३१, ३२१, आदि।

२. देखें दोहा सं० १११, ११७, १५१, १६२, ३३१।

और हावों की ऐसी सुन्दर योजना कोई शृंगारी कवि नहीं कर सका।” नीचे की हाव-भरी सजीव मूर्तियाँ देखिए—

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ ।

सौह करे भौंहनि हँसे देन कहँ नटि जाइ ॥४७२॥

इसमें सौह, करना भौंहनि हँसना तथा नट जाना—ये शारीरिक अनुभाव तो स्पष्ट हैं ही, मानसिक अनुभाव ‘आमाद’ व्यंग है। एक ही पंक्ति में इस प्रकार कई-कई अनुभावों की योजना बिहारी की कविता में उपलब्ध मूर्तिमत्ता का रहस्य है।

शारीरिक अनुभावों की योजना द्वारा सम्पूर्ण मानसिक व्यापार के चित्र को प्रस्तुत करने का विधान देखिए—

ललन चलन सुनि पलनु में अँमुआ झलके आइ ।

भई लखाइ न सखिन्हू झूठे ही जमुहाइ ॥३५८॥

“अनुभावयन्ति इति अनुभावाः” के अनुसार जो तत्त्व स्थायी भाव की स्थिति का अनुभव कराने में समर्थ हो, उन्हें अनुभाव कहते हैं। आश्रय की चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं।

शृंगार रसान्तर्गत ‘नायिका’ आलम्बन होती है, परन्तु आश्रय भी हो सकती है, लेकिन आश्रय होते हुए भी वह नायक के लिये आलम्बन बन जाती है। अतः नायिका की चेष्टाओं को ‘अनुभाव’ न मान कर ‘हाव’ कहते हैं और उनको उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत गिना जाता है। नायिका की चेष्टाओं अर्थात् हाव का एक सजीव उदाहरण देखिए—

रही दहेड़ी ढिग धरी, भरी मथनियाँ बारि ।

फेरति करि उलटी रई, नई बिलोबनि हारि ॥२४५॥

उस दोहे में प्रेमाधिक्य के कारण होने वाले विपरीत व्यवहार का वर्णन किया गया है। नायिका का व्यवहार नायक के प्रति प्रेम का सूचक है। अतः ‘अनुभाव’ होते हुए भी वह उद्दीपन का ही कार्य करता है यह ‘विभ्रम’ हाव है।

बिहारी ने कई स्थलों पर तो अनुभावों की ऐसी सुन्दर योजना की है कि सजीव चित्र ही उपस्थित हो जाता है तथा पूरा भाव भी सरलता के साथ हृदयंगम हो जाता है। यथा—

नाहिं अन्हाइ नहिं जाइ घर, चित चिहुंढ्यौ तकि तीर ।

परसि फुरहरी ले फिरति, बिहंसति घंसति न नीर ॥६४५॥

यहाँ 'फुरहरी' द्वारा 'कम्प' और 'पुलक' सात्त्विक अनुभावों की व्यंजना है और साथ ही नायक का प्रेम भी प्रकट है ।

निम्नलिखित दोहे में 'किल्किचित्' हाव की योजना के अन्तर्गत गर्व, अमर्ष, हर्ष इन तीन संचारी भावों की एक साथ योजना है, आयोजित शब्द-चित्र अर्थात् मूर्त-व्यापार-विधान दृष्टव्य है—

कहत, नटत रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात ।

भरे भौन में करत है नैनन ही सब बात ॥३२॥

नायिका का कथन किस प्रकार नायक के प्रेम को उद्दीप्त करता है, इसका बिहारी को पूरा ज्ञान था—

रह्यो, गुही बेनी, लखे गुहिवे के त्यौनार ।

लागे नीर चुचान जे, नीठि मुखाने बार ॥४८०॥

“विध्वोकस्त्वतिगर्वेण वस्तु नीष्टेप्यनादरः” के अनुसार यहाँ विध्वोक हाव हुआ । नायिका के गर्वपूर्ण उपालम्भ में अनादर का भाव न होकर प्रेम का आमन्त्रण है ।

बिहारी ने नायिका की चेष्टाओं अथवा हावों का विधान इस प्रकार किया है कि कहीं नायिका की शब्दावली और कहीं उसके शृंगार की मुद्रा सामने आ जाती है और तारीफ यह है कि सभी चेष्टाओं के उल्लेख की आवश्यकता नहीं पड़ती । वह अनेक चेष्टाओं में से एक-दो को चुनकर उस प्रकार रखने है कि पूरा चित्र प्रस्तुत हो जाता है । इनके हाव-विधान का वैभव है—

चितई ललचौहै चखनु, डटि घूँघट-पट माँह ।

छल सौं चली छुवाइ कं छिनकु छबिली छाँह ॥१२॥

शब्द-विधान सर्वथा ध्वन्यात्मक है । पदावली भावानुवर्तिनी है । छबिली छल सौं छिनकु छाँह छुवा कर मानो सामने ही छम-छम करती हुई चली जा रही है ।

नायक पक्ष में अनुभावों के विधान द्वारा मानसिक दशा के निरूपण का सफल दृश्य देखिए,—

कहा लड़ते दृग करे, परे लाल बेहाल ।

कहूँ मुरली, कहूँ पीत पटु, कहूँ मुकुट बनमाल ॥१५४॥

निम्नलिखित दोहे में भाव-निरूपण और भाव की अवस्था का चित्र व्यक्त करने के लिए अनुभावों की योजना की गई है—

उन हरकी हँसि के इतैं इन सौपी मुसुकाइ ।

नैन मिलै मन मिलि गए, बोऊ मिलवत गाइ ॥१२८॥

इसी प्रकार एक दोहे में विभिन्न अनुभावों की योजना द्वारा बिहारी ने सम्भोग शृंगार की व्यंजना कर दी है—

मैं मिसिहा सोयौ समुझि मुंह चूम्यो ढिग जाइ ।

हँस्यो, खिस्यानी गल, गह्यो, रही गरें लपटाइ ॥६४२॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि रस-व्यंजना जैसा कठिन कार्य भी बिहारी ने अनुभावों की योजना द्वारा कर दिखाया ।

बिहारी का अनुभाव विधान इतना सफल एवं वैभवपूर्ण है कि उसके द्वारा भाव में अतिरिक्त रस की सहज व्यंजना हो जाती है । सामान्य जीवन में मिलन के उत्साह का यह दृश्य देखते ही बनता है—

ज्यों ज्यों आवत निकट निसि त्यों-त्यों खरी उताल ।

झमकि-झमकि टहलैं करे लगी रहचटें बाल ॥५४३॥

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद ने 'बिहारी की वाग्विभूति' में लिखा है कि, "बिहारी ने केवल प्रस्तुत नायिका की ही मुद्राओं का चित्रण नहीं किया है, नायिका आदि के लिए अप्रस्तुत रूप में लाए गए जीवों एवं पदार्थों के व्यापारों का भी अच्छा चित्रण किया है । अप्रस्तुत के उन व्यापारों को लेकर नायिका के स्वरूप का चित्र खड़ा करने में भी अच्छा कौशल दिखाया है—

चिलक चिकनई, चटक सौ लफति सटक लौं आइ ।

नारि सलौनी साँवरी, नागिनि लौं डसि जाइ ॥१९६॥

इस दोहे में नामिन उपमान है । उसकी मुद्राओं का निरूपण 'चिलक चिकनई' द्वारा किया गया है । परन्तु विशेषता यह है कि चमक और सचिक्कणता के साथ-साथ उसका चटकना और लफना भी है ।

विरहिणी की दशा के चित्रण के लिए अनुभावों का यह चमत्कारपूर्ण आयोजन देखिए—

इत तैं उत उत तैं इतैं, छिनु न कहूँ ठहराति ।

जक न परति, चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति ॥२०६॥

उद्दीपन-विधान के लिए भी इनके द्वारा की गई अनुभाव-योजना बहुत ही सफल हुई है—

लटक लटक लटकतु चलतु डटतु मुकुट की छाँह ।

चटक-भर्यौ नटु मिलि गयौ, अटक-भटक-बट माँह ॥१६२॥

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मित्र का कथन है कि, “बिहारी की कविता में जैसा सच्चा विधान हावों एवं अनुभावों का दिखाई पड़ता है, वैसा हिंदी के कम कवियों में मिलता है । अनुभावों एवं चेष्टाओं की योजना की यह विभूति आगे चल कर हिंदी के दो रससिद्ध कवियों में और देख पड़ी—एक हैं पद्माकर और दूसरे हैं रत्नाकर । इस विचार से बिहारी हिन्दी के अन्य कवियों से अपनी एक अलग विशेषता रखते हैं । बिहारी की कविता की सबसे बड़ी विशेषता इन्हीं के विधान में दिखाई पड़ती है ।”

अतः शुक्लजी का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि, “बिहारी की रसव्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों तथा हावों के सजीव तथा निपुण विधान में दिखाई देता है ।”

: १६ :

बहुज्ञता

साहित्यिक ज्ञान के अतिरिक्त कवि के लिए लोक-जीवन के अन्यान्य विषयों की जानकारी आवश्यक है। मम्मटाचार्य ने कवि के लिए काव्य के अनुशीलन के अतिरिक्त शास्त्र और लोक का अध्ययन एवं निरीक्षण अपरिहार्य माना है।^१

हमको कवि को जानकारी का निर्देश करते समय अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। किसी विषय की सामान्य-ज्ञान विषयक चर्चा देखकर हमें कवि को उक्त विषय का पण्डित नहीं मान लेना चाहिए।

बिहारी की कविता में कई शास्त्रों की जानकारी का जो भी प्रमाण मिलता है वह इतना सामान्य है कि उसके आधार पर उनको उन विषयों का पण्डित कह देना विशेष युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता है। सतसई के कई दोहों के आधार पर (१३, २०, ४१, १८१, ४२८, ६४८)। कतिपय विद्वानों ने उनको बड़ा भारी दार्शनिक कह दिया और कुछ लोगों के मतानुसार उनको दार्शनिक कहना उपहास्यास्पद है। हमारे विचार से हमारा दृष्टिकोण इनके बीच का होना चाहिए। बिहारी दार्शनिक भले ही न रहे हों, परन्तु उनको दर्शन शास्त्र के सामान्य नियम अवश्य विदित थे---

मैं समुझ्यो निरधार, यह जगु काँचो काँच सौ।

एकै रूप अपार प्रतिबिंबित, लखियतु जहाँ ॥१८१॥

इस सोरठा में वेदान्त के 'प्रतिबिम्बवाद' की चर्चा है। संसार की असारता दिखाने के लिए काँच का दृष्टान्त दिया है। यह जगत काँच के शीशे की तरह कच्चा अर्थात् क्षणभंगुर है। ज्ञान की चोट से वह चकनाचूर हो जाता है। उसमें वही एक ब्रह्म प्रतिबिम्बित होता है—यह सब दृश्य जगत उसी का विराट

१. शक्तिनिपुणता लोकशास्त्रकाव्याधवेक्षणात् ।

काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥ (काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास)

रूप है। नाना भाव की पार्थक्यप्रतीति का कारण नाम, रूप, मिथ्या है। वेदान्त के अनुसार प्रपञ्च के पाँच अंश हैं—अस्ति, भाति, प्रिय, रूप और नाम। प्रथम तीन ब्रह्म के रूप हैं तथा पिछले दो अंश-नाम और रूप जगत के स्वरूप हैं। प्रत्येक पदार्थ में सत्ता, प्रकाश और प्रेमास्पदता, ब्रह्म का रूप है, जो सत्य है। घट पटादि नाम और आकार संसार का रूप है—यही मिथ्या है।

जायसी ने इस 'प्रतिबिम्बवाद' को अन्य प्रकार से अभिव्यक्त किया है—

नयन, जो देखा कमल भा, निरमल नीर सरीर।

हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।

बिहारी ने सत्संगति की महिमा पर भी इसी प्रकार सुन्दर दोहा लिखा है—

अज्यौ तरयौना ही रह्यौ श्रुति सेबत इक अंग।

नाकबास बेसर लह्यौ बसि मुक्तनि के संग ॥२०॥

संसार-सागर से पार जाने के लिए जीवन्मुक्त पुरुषों की संगति एक प्रमुख उपाय है—इस बात को बिहारी ने उक्त मनोहर श्लेष में लपेट कर बड़े ही निराले ढंग से कह दिया है। ब्रह्मदर्शन के उपायों का निर्देश करनेवाली एक श्रुति इस प्रकार है—

आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥

इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।

मत्वा च सततं ध्येय इति दर्शनहेतवः ॥

श्रुतियों के द्वारा ब्रह्म के सम्बन्ध में सुना, अनुमान के द्वारा उसके सच्चिदानन्द स्वरूप को जाना, निरन्तर ध्यान द्वारा किसी प्रकार इस तत्त्व को बुद्धि में ठहराया। फिर भी ब्रह्म ऐसा अलक्ष्य (अलेख) है कि लखा नहीं जाता—उसका साक्षात्कार नहीं होता। इसी बात को बिहारी ने कामिनी की कमर को लक्ष्य करके बड़े ही मनोहारी ढंग से कहा है। यथा—

बुधि अनुमान प्रमान श्रुति किए नोठि ठहराइ।

सूछम कटि पर-ब्रह्म लौं अलख लखी नहि जाइ ॥६४८॥

यदि कटि नहीं है, तो यह शरीर-प्रपञ्च किसके सहारे स्थिति है। ब्रह्म नहीं, तो यह विश्व-प्रपञ्च, किसमें स्थिति है? अतः कटि-ब्रह्म की स्थिति अवश्य है। साक्षात्कार नहीं होता है, तथापि इस तत्त्व को कटि-ब्रह्म के सत्तास्वरूप को निरन्तर ध्यान द्वारा किसी प्रकार बुद्धि में ठहराते हैं।

इसी प्रकार का इनका एक अन्य दोहा भी है—

जगनु जनायो जिहि सकल सो हरि जान्यौ नाहि ।

ज्यौं आंखनि सब देखिये आंखि न देखी जाहि ॥४१॥

इसी प्रकार बिहारी की कविता में गणित (३२७, ४४२), वैयाक (५५७), कृपि (३७८), आदि सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनकी बहुज्ञता के सम्बन्ध में मिश्रबन्धु ने ठीक ही लिखा है कि, “बिहारी की दृष्टि संसार भर के सभी पदार्थों पर बड़ी पैनी पड़ती थी और ये महाशय अपने मतलब की बात खूब देख लेते थे। बिहारीलाल ने ज्योतिष से सम्बन्धित अधिक उक्तियाँ कही हैं। बहुत सम्भव है इनको इस विषय की अच्छी जानकारी रही हो। इनके कई दोहों में (५, ४२, २७४, ६६०) ज्योतिष-ज्ञान सम्बन्धी ऐसी बातें कही गई हैं जो साधारणतया बहुप्रचलित नहीं कही जा सकती हैं। यथा—

सनि-कज्जल चख-झल-लगन, उपज्यौ सुदिन सनेहु ।

क्यों न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेसु सबु देहु ॥५॥

तथा—

मंगलु बिन्दु सुरंगु, मुखु ससि, केसरि-आइ गुरु ।

इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन-जगत ॥४२॥

“बिहारी ने अपनी कविता में धर्म-सम्बन्धी आचार-विचारों का एवं ऐतिहासिक घटनाओं का भी बहुत हवाला दिया है। इसी प्रकार लोगों के विश्वासों पर भी इनके कई छन्द अवलम्बित हैं। × × × बिहारी ने अन्तिम शतक में कुछ दोहे नीति और शिक्षा के भी अच्छे कहे हैं।” आदि लिखने के पश्चात् निष्कर्ष रूप में मिश्रबन्धु ने लिखा है कि, “बिहारी ने बहुत सी बातों का वर्णन किया है परन्तु स्त्री को यह सब से अधिक चित्ताकर्षक समझते हैं—

ताहि देखि मन तीरथनि बिटटनि जाय बलाय ।

जा मृगनंती के सदा बेनी परसति पाय ॥

डा० हरवंशलाल शर्मा ने ‘बिहारी और उनका साहित्य’ के अन्तर्गत बिहारी की बहुज्ञता का सविस्तार विश्लेषणात्मक विवेचन किया है। निष्कर्ष रूप में उन्होंने लिखा है कि, “स्पष्ट है कि बिहारी ने अनेक विद्याओं की साधारण बातों का उचित उपयोग किया है। × × × यह सत्य है कि बिहारी ने तुलसी के समान लोक के विस्तृत क्षेत्र के अधिकांश भाग का पर्यवेक्षण नहीं किया, फिर भी जितने क्षेत्र की मर उन्होंने की है उसका पूरा-पूरा अनुभव प्राप्त किया है

और उससे यथासम्भव लाभ भी उठाया है। सामाजिक, राजनीतिक, लौकिक, अलौकिक कितने ही प्रसंगों और वस्तुओं का प्रयोग उनकी सतसई में मिलती है।”

प्र० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का निष्कर्ष भी प्रायः इसी प्रकार है यथा—
“साहित्य की जानकारी के अतिरिक्त बिहारी को सभी बाहरी विषयों की जानकारी भी सामान्य रूप में थी, संसार के सब प्रकार के अनुभवों को लेकर उन्होंने काव्य के भीतर उन्हें यथास्थान प्रयुक्त किया। इससे उनकी दूर तक दौड़ने वाली दृष्टि और माथ ही तीव्र अवेक्षण-शक्ति का पता चलता है।
× × × सामान्य जीवन से और अधिकतर × × × प्रसिद्ध बातों को लेकर ही उन्होंने काव्य के भीतर उन्हें प्रस्तुत या अप्रस्तुत के रूप में दिखाने का प्रयत्न किया है। इससे उनकी व्यापक काव्य-दृष्टि का पता चलता है।”

बिहारी की सतसई में विविध विषयक ज्ञान की चर्चा का एक बहुत ही मनोरंजक परिणाम हुआ। बिहारी के दोहों में विशेष शास्त्रों का समर्थन मान कर किसी ने उसके दोहों का अर्थ बौद्धपरक अर्थ में कर दिया, तो किसी ने उसको इशक फौजदारी का ही ग्रन्थ बना दिया। एक महाशय ने तो उसके दोहों का भौगोलिक दृष्टि से अर्थ बिठाकर उसे भूगोल का ही ग्रन्थ प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। हमारे विचार से ये सब दिमागी कसरत अथवा दिमागी ऐय्याशी ही है। इस प्रकार के प्रयत्न अपरिपक्व बुद्धि वाले व्यक्तियों के मन में व्यर्थ ही भ्रम उत्पन्न करते हैं।

: १७ :

सफल मुक्तककार

मुक्तक का स्वरूप—विद्वानो ने 'मुक्तक' शब्द के विभिन्न प्रकार से अर्थ किये हैं। सामान्यतः अपना अर्थ व्यक्त करने में स्वतः समर्थ रचना को मुक्तक कहते हैं।^१ लगाव पूर्वापर किसी छन्द से लगाव न होने पर भी जो छन्द अपना अर्थ व्यक्त करने में सर्वथा समर्थ हो, ऐसी अनुबन्धहीन, स्वच्छन्द या स्वतः अर्थ द्योतन में समर्थ रचना मुक्तक कहलाती है।

केशवकृत 'शब्द कल्पद्रुम' में 'मुक्तक' शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है—

विनोकृतं विरहितं व्यवच्छिन्नं विशेषितम् ।

भिन्न स्वाद्यन्तर्व्यूहे मुक्तं योवानि शोभनः ॥

{जो काव्य अर्थपर्यवसान के लिए परापेक्षी न हो, वह मुक्तक कहलाता है।

प्रबन्ध काव्य का पद्य स्वनन्तरूप से रसचर्वण या चमत्कृति में समर्थ नहीं होता है। इसके विपरीत मुक्तक काव्य में रसयोजना एवं चमत्कृति के समस्त उपादान एक ही पद्य में उपस्थित रहते हैं।

सरकृत के प्राचीन आचार्यों ने स्फुट या अनिवद्ध काव्य को मुक्तक संज्ञा प्रदान की। अग्निपुराणकार ने 'मुक्तक' उस श्लोक को माना जो सहृदयों में चमत्कार का आधान करने में समर्थ होता है।^२

आनन्दवर्चन ने सर्वप्रथम इनकी रस ममता की चर्चा की।^३

१. मुक्तमन्येन नालिगितं तस्य संज्ञायां कन्

पूर्वापर निरपेक्षेणपि हि येन रसवर्चणा

"क्रियते तदेव मुक्तकम्"—अभिनवआचार्य

२. मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षमः सताम्-अग्निपुराण ।

३. प्रबन्ध मुक्तकेवादि रसादीन बन्धुमिच्छता-ध्वन्या लोक ।

सामान्यतः कोई भी निरपेक्ष कथन मुक्तक काव्य का आधार हो सकता है, लेकिन सफल एवं प्रभावोत्पादक मुक्तक काव्य वही कहाता है जिसमें संपूर्ण जीवन या जीवन के सामान्य क्रियाव्यापारों के मेल में आने वाला खंडचित्र लेकर कोई बंधन बांधा जाता है। जीवन के वे मार्मिक वृत्त जो रसमग्न करने में सहायक हों, मुक्तक काव्य के आधार बनते हैं।

× × × यदि सामान्य जीवनक्षेत्र से हट कर कवि किसी ऐसे लोक में पहुँचकर मुक्तक लिखता है जो पाठक के लिए अनजाना है तो मुक्तक का प्रभाव कठिनाई में पड़ेगा और उसमें अभीष्ट सरसता भी न आ सकेगी।”^१

बिहारी की काव्य-रचना का विवेचन करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मुक्तक काव्य का लक्षण इस प्रकार निर्धारित किया है—“मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथाप्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभावग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छोटे पडते हैं जिनसे हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से वह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है।”^२

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद के मनानुसार “मुक्तक रचना यद्यपि निरपेक्ष भाव से रची जाती है, यह उसमें जीवन का कोई चित्र लेकर अथवा व्यंग्य का आधार लेकर ही कुछ कहा जाय तो इस प्रकार के कथनों का प्रभाव शुष्क-कथनों की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जाता है।”^३

मुक्तकों और सूक्तियों के भेद का विवेचन करते हुए प्रो० मिश्र ने लिखा है

१. पृ० सं० ५०५ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पष्ठ भाग, प्रथम संस्करण।
२. पृ० सं० २६८ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सवंत् १९६७ संस्करण।
३. पृ० सं० ३१ बिहारी की ‘वाग्विभूति’—प्रथम संस्करण।

कि हिन्दी में मुक्तक-रचना करने वालों ने अधिकांश नीतिकाव्य कहे हैं × × × बिहारी ने केवल शुष्क कथन कहकर उसे नीति की राजशास्त्रीय उक्ति नहीं बनाया है। उन्होंने बराबर किसी ऐसे दृष्टान्त या युक्ति से काव्य लिखा है जो उस तथ्य की सार्थकता को प्रमाणित करने में सहायता पहुँचाये। इसी वक्रता के कारण बिहारी में सूक्तियाँ तो पाई जाती हैं, पर कोरे नीति-कथन नहीं। यह भी बिहारी की अन्य मुक्तक-रचयिताओं से एक विनिष्टता है।”

यहाँ एक बात की ओर संकेत कर देना आवश्यक है। यद्यपि बिहारी रीति-शास्त्र की लीक पीटने वाले कवियों की तरह बँधकर नहीं चले थे, तथापि समय का प्रभाव तो उन पर पड़ा ही था। प्रसंग-विधान की दृष्टि से इनको नायिका भेद-कथन और हाव-भाव-विश्लेषण के दायरे में ही बँधकर चलना पड़ा।

एक सफल मुक्तककार में तीन गुणों का होना आवश्यक माना जाता है— (क) जीवन का विस्तृत अनुभव और ज्ञान का भण्डार। (ख) प्रत्युत्पन्नमतित्व तथा (ग) वक्रकथन। वक्रकथन का स्पष्टीकरण करते हुए डा० हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि, “दृष्टान्त सूक्तिकार का सबसे बड़ा बल है। यदि उक्ति का बाँकपन तलवार की धार है, तो दृष्टान्त तलवार की मूँठ है।”

हम ‘बहुज्ञता’ एवं ‘कलापक्ष’ के अन्तर्गत बिहारी के जिन गुणों की चर्चा कर चुके हैं, उनके आधार पर यह सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि उनमें एक सफल सूक्तिकार के समस्त गुण विद्यमान थे। डा० हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि, “बिहारी शृंगार के रससिद्ध कवि थे उनके अधिकांश मुक्तक रस-निर्भर हैं। सूक्तियाँ अपेक्षाकृत कम हैं और कोरे नीति कथनों का एकदम अभाव है। × × × बिहारी ने सदा ही ऐसे दृष्टान्त युक्तियाँ और ढंग अपनाये हैं कि उनकी रचना में वाग्दिग्धता का स्वतः प्रवेश हो जाता है और वह शुष्क नीति उपदेश न रह कर सूक्ति बन जाती है। × × × बिहारी की प्रसिद्धि उनकी सूक्तियों के कारण नहीं है, अपितु सरस मुक्तकों के कारण है।

बिहारी के समय की रसात्मक मुक्तक-परम्परा को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। यथा—

(क) कृष्ण-काव्य परम्परा (ख) प्राकृत काव्य-परम्परा और (ग) प्रकृति चित्रण की परम्परा।

मुक्तक काव्य की परम्परा—संस्कृत वाङ्मय में मुक्तक रचना का सूत्रपात वैदिक काल से ही मिलता है। परन्तु मुक्तक में रस की स्थिति बहुत पीछे स्वीकृत हुई—कदाचित् नाट्य शास्त्र के पश्चात् ही।

राजशेखर तथा वामन ने तो मुक्तक रचना को मध्यम कोटि के काव्य के अन्तर्गत रखा। राजशेखर ने मुक्तक काव्य रचना करने वाले कवियों को महाकवि ही नहीं माना तथा वामन ने स्पष्ट लिख दिया कि मुक्तक-रचना कवि कर्म की प्रथम सीढ़ी है। निपुणता प्राप्ति के लिए कवि को प्रबन्ध-काव्य-रचना में प्रवृत्त होना चाहिए। इस प्रकार द्वावी शताब्दी तक मुक्तक रचना को उच्च स्थान प्राप्त नहीं हो सका। परन्तु बाद में मुक्तक की श्रेष्ठता स्वीकृत हो गई और महाकवि की कोटि के कई कवि इस ओर प्रवृत्त हुये और उनकी रचनाएँ विद्वत्समाज में सम्मानित हुई।

आधुनिक काल तक तो मुक्तक काव्यक्षेत्र में शीर्ष स्थान का अधिकारी बन गया। सर जार्ज ग्रियर्सन ने भारतीय मुक्तक के विषय में लिखा है कि, “भारतीय काव्यानन्द का सम्यक् रूप मे यदि कही प्रस्फुटन हुआ है तो वह उसके मुक्तक काव्य मे ही हुआ है। मुक्तक काव्य में भारतीय उदात्त वृत्ति का पूर्ण सामंजस्य अधिगत होता है।”

हिन्दी के रीतिकाल के काव्य कवियों ने संस्कृत की शृंगार-मुक्तक-परम्परा को स्वीकार किया और उन्होंने शृंगार प्रधान रचनाएँ लिखीं शृङ्गार-मुक्तक-परम्परा में हमको सर्वप्रथम रचना हाल रचित ‘गाथा सप्तशती’ उपलब्ध होती है। इसका रचना-काल ईसा की दूसरी शती के आसपास है। इसके पश्चात् कवि अमरुक की प्रसिद्ध मुक्तक रचना ‘अमरुकशतक’ मिलती है।^१ इसके बाद गोवर्धनाचार्य की रचना ‘आर्यासप्तशती’ मिलती है।

प्राकृत और संस्कृत की यह परम्परा अपभ्रंश में भी चलती रही। हेमचन्द्र के व्याकरण ग्रन्थ में प्रेम, शृंगार और वीर रस सम्बन्धी मुक्तक प्राप्त होते हैं। सोमप्रभाचार्य, के ‘कुमारपाल प्रतिबोध’, राजशेखर सूरि के ‘प्रबन्ध कोष’, प्राकृत पैगलम् और पुरातन प्रबन्ध संग्रह में स्फुट रूप से मुक्तकों की परम्परा देखी जा सकती है। मुक्तक की परम्परा संस्कृत साहित्य में, अविच्छिन्न रूप से चलती रही। शृंगार, तिलक, घटकपर्ण, भर्तृहरि रचित शृंगारशतक, विल्हण की

१. “अमरुक कवेरेकः श्लोकः प्रबन्ध शतायते”—आनन्दवर्धन।

चौर पंचाशिका आदि शृंगार प्रधान मुक्तकों की परम्परा ही में आते हैं। संस्कृत की इस शृंगार-मुक्तक-परम्परा के द्वारा ही हिन्दी रीतिकाल के बिहारी आदि कवियों ने प्रेरणा ग्रहण की।

हिन्दी की शृंगार-मुक्तक-रचनाओं की विशेषतायें :

एक परम्परा विशेष के अनुसरण पर रचना करने वाले ये मुक्तककार एक सीमा विशेष के बाहर नहीं जा सकते थे। इन शृंगार मुक्तकों की कुछ सामान्य विशेषतायें हैं। यथा—

- (१) शृंगार वर्णन के लिए रीति परिपाटी का त्याग सम्भव नहीं था।
- (२) रीतिबद्ध कवियों ने यद्यपि स्पष्टतः 'रीति' में अपने आपको नहीं बाँधा तथापि उनके काव्य में रीति की छाप आधोपात दिखाई देती है।
- (३) इन कवियों के काव्य पर संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रचलित सम्प्रदायों में तीन सम्प्रदायों का प्रभाव दिखाई देता है—रस, ध्वनि और अलंकार बिहारी पर ध्वनिवाद का प्रभाव है।^१
- (४) इन कवियों ने लक्षण-उदाहरण की शैली पर अलंकार प्रतिपादन नहीं किया। अपने लक्ष्यग्रंथों में केवल अलंकारों की योजना उन्होंने की।
- (५) केवल शृंगार का वर्णन करने वाले कवियों की दृष्टि में रस सम्प्रदाय ही प्रधान था। इन कवियों का घनिष्ठ सम्बन्ध ध्वनि और रस सम्प्रदाय के साथ ही रहा। वैसे, अप्रत्यक्ष रूप में अलंकार और वक्रोक्ति का भी प्रभाव इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है।
- (६) इन कवियों की कविता में भावुकता और कला का अद्भुत समन्वय पाया जाता है।

१. "रीतिकाव्य में ध्वनिवाद का सर्वोत्कृष्ट रूप बिहारी और प्रतापसाहि में मिलता है। बिहारी ने यद्यपि लक्षणग्रंथों की रचना नहीं की तथापि उनके काव्य की प्रवृत्ति सर्वथा ध्वनिवाद के ही अनुकूल थी। उनके दोहों के काव्यगुण का विश्लेषण करने पर यह संदेह नहीं रह जाता कि वे रसवाद के शुद्ध मानसिक आनन्द की अपेक्षा ध्वनिवाद के बौद्धिक आनन्द को ही अधिक महत्त्व देते थे।" (पृ० सं० १७०-१७१) रीतिकाव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण।

- (७) इन रीतिबद्ध काव्य कवियों ने शृंगार वर्णन के अन्तर्गत संयोग और वियोग के जैसे मार्मिक चित्र उपस्थित किए हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं ।
 (८) विरह के वर्णन ऊहात्मक शैली में किया गया है । परन्तु प्रवत्स्यपतिका और प्रागतपतिका नायिकाओं के उदाहरणों में भावुकता का समावेश पाया जाता है । ये वर्णन सर्वथा स्वाभाविक शैली पर हैं ।
 (९) संचारी भावों के वर्णनों में भावुकता का संस्पर्श है ।

बिहारी ने प्रत्येक परम्परा को अपनाते हुए अपना योगदान प्रदान किया ।

(क) कृष्णकाव्य-परम्परा—इसके अन्तर्गत दो परम्पराएँ प्रचलित थीं—

- (ii) जयदेव और विद्यापति की परम्परा, जिसमें कृष्ण और राधा का उल्लेख नायक और नायिका के रूप में किया गया है । तथा (ii) मूर इत्यादि भक्त कवियों की जिसमें कृष्ण की विशिष्ट जीवन लीलाओं के प्रेम भरे अंशों को लेकर कविता की जाती थी । कहने की आवश्यकता नहीं है कि बिहारी ने जयदेव तथा विद्यापति की परम्परा का पालन किया है । बिहारी ने इसी दृष्टिकोण से 'मोहन', 'मनमोहन' नन्दकुमार तथा 'घनश्याम' शब्दों का प्रयोग किया है । यथा—

कंजनयनि मंजु किए बैठी द्यौरति बार ।

कच-अंगुरी-बिच दीठि करि चितवति नंदकुमार ॥३५६॥

ठाढ़ी मन्दिर पै लखै मोहन-दुति सुकुमारि ।

तन थाकेहू ना थकै चख चित चनुर निहारि ॥

साजे-मोहन-मोह कौं, मोहीं करत कुचन ।

कहा करौ, उलटे परे टोने लोने नैन ॥४७॥

डा० रामसागर त्रिपाठी ने 'बिहारी मीमांसा' के अन्तर्गत इस विषय की चर्चा करते हुए इसका विश्लेषण प्रस्तुत किया है और बताया है कि बिहारी ने दर्शन तथा आकर्षण, उत्कण्ठा की तीव्रता, संकेत तथा अभिप्राय, हास्य विनोद, दूती-सम्प्रयोग, भाव-गोपन, खण्डिता वर्णन, वियोग-वर्णन, आदिक से सम्बद्ध कौन-कौन से दोहे लिखे हैं ।

बिहारी ने भक्ति-कवियों की परंपरान्तर्गत कृष्ण की लीलाओं में से संवद्ध भी कुछ दोहे लिखे हैं । उद्धव का ज्ञानोपदेश वाला प्रसंग भक्त-कवियों के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु रहा है । बिहारी ने भी इसी को लक्ष्य करके कुछ दोहे लिखे हैं^१—

जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुक्ति मुंह दीन ।

जो लहिए संग सजन, तौ धरक नरक हूँ कीन ॥७५॥

बिहारी ने कृष्ण के लोकोत्तर कृत्यों को लेकर भी कुछ दोहे लिखे हैं । जैसे, पूतना-वध तथा विश्व-रूप दर्शन, गोवर्धन-धारण (५२१, ५४१), रुक्मिणी-हरण (२१५), अधामुर-वध (७११), दावानल-पान (३१२) ।

(ख) प्राकृत-मुक्तक परम्परा -- बिहारी सतसई की रचना 'हाल' के आदर्श पर हुई है । अतएव इनमें प्राकृत जन विषयक दोहों का प्राधान्य है । अतः बिहारी ने ऐसे समाज का चित्रण किया है, जिसमें आमोद-प्रमोद का बाहुल्य है । इन्होंने इस परम्परा के अन्तर्गत आत्मादजनक परिस्थिति, भावना तथा चेष्टाओं का चमत्कार के साथ वर्णन किया है ।^१

(ग) प्रकृति-काव्य परम्परा - प्रकृति को मानव-भावना अथवा चेतना से संवलित देखने की प्रवृत्ति वैदिक काव्य से चली आरम्भ थी, परन्तु मध्ययुग में आकर प्रकृति-चित्रण की प्रवृत्ति प्रायः उद्दीपन स्वभाव के रूप में ही रही ।

जैसा कि हम अन्यत्र लिख चुके हैं—बिहारी ने प्रकृति का वर्णन आलम्बन रूप में भी किया है और उद्दीपन रूप में भी किया है ।

सारांश रूप में बिहारी की मुक्तक-काव्य-रचना के विषय में निम्नलिखित विशेषताएँ ध्यान में रखने योग्य हैं—

(१) बिहारी ने अपने समय में प्रचलित समस्त परम्पराओं को अपनाते हुए मुक्तक लिखे । उनके दोहे इन विषयों से सम्बद्ध हैं—

(i) कृष्ण-काव्य के विषय (ii) प्रकृति काव्य के विषय (iii) प्रकृति-वर्णन (iv) धार्मिक-मुक्तक, (v) सूक्ति-काव्य तथा (vi) प्रशस्ति काव्य ।

“बिहारी की कविता का मूल प्रवृत्ति-निमित्त हाल के आदर्श पर प्राकृत प्रेम की कविता करना है तथापि मुक्तक काव्य के क्षेत्र में आने वाले सभी विषयों पर अनुपंगिक रूप में इन्होंने कविता की है ।” (डा० रामसागर त्रिपाठी)

(२) “बिहारी ने जयदेव तथा सूर दोनों की परम्पराओं पर मुक्तक पद्य प्रस्तुत करके काव्य क्षेत्र के विस्तार का परिचय देने में सफलता प्राप्त की ।”

(३) इनके मुक्तकों में प्रायः आभिजत्य-वर्ग का चित्रण है ।

१. देखें दोहा सं० ३२, ६२, १८७, २१४, ३१२, ६३६, ६४२ इत्यादि ।

- (४) बिहारी का मुख्य-क्षेत्र शृंगार-रसाभिव्यक्ति है ।
- (५) बिहारी में प्रसंगों की विविधता के दर्शन कम ही होते हैं, अधिकतर वही नायिकाभेद का पिष्टपेषण है ।
- (६) “परम्परा में बँधे रह कर भी बिहारी ने रूढ़ प्रसंगों को नये ढंग से प्रस्तुत कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।” (डा० हरवंशलाल शर्मा)
- (७) कहीं-कहीं बिहारी ने नये प्रसंगों की भी उद्भावना की है ।
- (८) रूढ़ि पर टिके रहने पर भी उनके अधिकांश प्रसंग सहजगम्य हैं ।
- (९) “रस निर्झर मुक्तकों की अपेक्षा सूक्तियों में सामान्य जीवन के दैनिक अनुभव से संगृहीत प्रसंगों की संख्या और प्रभविष्णुता अधिक है ।” (डा० शर्मा)
- (१०) अपने समय में प्रचलित मुक्तक-काव्य की चारों परम्पराओं तथा रसात्मक मुक्तक की तीनों प्रवृत्तियों एवं दोनों प्रकार की शैलियों (स्वाभावोक्ति एवं अत्युक्ति) पर काव्य रचना करके बिहारी ने अपनी प्रखर काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है । डा० त्रिपाठी के शब्दों में, “बिहारी की प्रखर प्रतिभा ने मुक्तक काव्य-परम्परा के वास्तविक रहस्य को समझा था और उसका पूर्ण प्रतिनिधित्व करने की सफल चेष्टा की ।”

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि, “मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।”

सफलता एवं लोकप्रियता के कारण— काव्यगत विशेषताएँ

(क) सफलता के कारण—मुक्तक रचनाकार के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'समाहार शक्ति' के साथ भाषा की समास-शक्ति को बिहारी की सफलता का प्रमुख कारण माना है।

कुछ विद्वानों ने शृंगार के व्यापक निरूपण को बिहारी की लोकप्रियता का मूल कारण बताया है।

मिश्रबन्धु के मतानुसार विषयों का बाहुल्य बिहारी की लोकप्रियता का कारण बना है—“इसी प्रकार की बातों के बाहुल्य के कारण सतसई पढ़ने में चित्त कभी उकताता नहीं। × × × इसके कुछ दोहे तो ऐसे हैं कि उनका तात्पर्य थियेटरों में एकट करने योग्य है।” मिश्रबन्धु ने तो स्पष्ट लिखा है कि रामायण के पश्चात् इसकी लोकप्रियता का कारण ही यह है कि इसका “कोई एक भी दोहा ऐसा नहीं है, जो खराब कहा जा सके।”

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बिहारी की सफलता का उद्घाटन करते हुए लिखा है कि, “मुक्तक-रचना का प्रकृत रूप वही होगा जिसमें हृदय-पक्ष और कला-पक्ष सम हो। × × × बिहारी में दोनों बराबर हैं।” अर्थात् भावपक्ष एवं कलापक्ष का सुन्दर समन्वय ही उनकी सफलता एवं लोक प्रियता का प्रमुख कारण है।

(ख) सामान्य विशेषताएँ—बिहारी के काव्य की सामान्य विशेषताएँ निम्न-लिखित प्रकार हैं—

(१) बिहारी के काव्य की आत्मा शृंगार है। शृंगार की व्यंजना ध्वनि के माध्यम से हुई है। शृंगार वर्णन के लिए बिहारी ने संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्ष स्वीकार किए हैं, और दोनों ही पक्षों के उत्कृष्ट वर्णन लिखे हैं।

- (२) बिहारी रीतिबद्ध काव्य-कवियों की श्रेणियों में आते हैं।
- (३) बिहारी तत्त्वज्ञानी या दार्शनिक न होने पर भी तत्त्वज्ञान की बात बड़े ही सहज रूप में कह सकते थे।
- (४) बिहारी की भाषा शुद्ध, सुव्यवस्थित और समर्थ साहित्यिक ब्रजभाषा है। बिहारी ने समास पद्धति स्वीकार करके ब्रजभाषा को सुगठित एवं परिष्कृत रूप प्रदान किया। आचार्य शुक्ल के शब्दों में, “इनकी भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना व्यवस्थित है और रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है।”

शब्दों की तोड़-मरोड़ करने के दोष से बिहारी बहुत कुछ मुक्त हैं। भाषा की रमणीयता पर बिहारी ने पूरा ध्यान रखा है।

“बिहारी ने रमणीय अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त भाषा का प्रयोग करके रीतिकालीन कवियों में भाषा-विषयक व्यवस्था का सूत्रपात्र किया। उनसे पहले किसी कवि की भाषा में ऐसा परिमार्जन दृष्टिगत नहीं होता। × × × बिहारी ने सबसे पहले शब्दों की एकरूपता और प्रांजलता पर ध्यान दिया। इसके फलस्वरूप पटवर्ती कवियों की भाषा के परिष्कार का मार्ग प्रशस्त हो सका।” (डा० विजयेन्द्र स्नातक)

- (५) बिहारी की अन्योक्तियों और सूक्तियों में जीवन के अनुभूत सत्यों का बड़ी सजीव भाषा में वर्णन हुआ है। × × × “बिहारी की अन्योक्तियाँ हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक टकसाली रही हैं। उनकी मार्मिकता काव्यत्व के कारण बढ़ गई है। वे भावव्यंजक होने के साथ गहरा प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हैं।”^१
- (६) बिहारी संस्कृत साहित्य, प्राकृत एवं अपभ्रंश की मुक्तक, परम्परा तथा रीतिशास्त्र से पूर्णतया परिचित थे।
- (७) बिहारी की कविता में कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ भाषा की समास-शक्ति का पूर्ण सामंजस्य पाया जाता है। इस मणि-कांचन-संयोग के फलस्वरूप उनकी मुक्तक-रचना बहुत ही सफल हुई है। मिश्रबन्धु के

शब्दों में इस एक छोटे से ग्रन्थ में इस कविरत्न ने मानों समुद्र कूड़े में बन्द कर दिया है ।”

(८) बिहारी का अनुभाव विधान अद्वितीय है । शुक्लजी के शब्दों में बिहारी की रसव्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों के विधान में दिखाई पड़ता है ।” अन्य स्थलों पर इनकी योजना की निपुणता और उक्ति कौशल के दर्शन होते हैं, परन्तु “इस विधान में इनकी कल्पना की मधुरता झलकती है अनुभावों और हावों की ऐसी सुन्दर योजना कोई शृंगारी कवि नहीं कर सका है ।”

(९) मिश्रबन्धु ने लिखा है कि यह आप बीती खूब कहते थे और जगबीती भी खूब देखते थे । स्त्रियों के कोमल स्वभाव के विषय में इस रसिक शिरोमणि का निष्कर्ष देखने योग्य है ।

(१०) डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने कवि के पूर्ण विकास के लिए तीन आवश्यक बातों का उल्लेख किया है (१) प्रतिभा (२) अध्ययन और (३) आभास और उनके काव्य-गुणों की चर्चा के निष्कर्षरूप उन्होंने लिखा है कि, “उनके व्यक्तित्व में तीनों गुणों का समन्वय मिलता है ।”

हमारे विचार से डा० गुप्त का निष्कर्ष सर्वथा युक्तिसंगत है । दोहों की सरसता उनकी प्रतिभा की परिचायिका है; बहुज्ञता एवं विविध परम्पराओं का निर्वाह उनके व्यापक अध्ययन का द्योता करता है, तथा उनके दोहों की परिष्कृति एवं उनका भाषाधिकार उनके गहन अभ्यास का परिचायक है ।

(११) बिहारी की रुचि में कला-प्रियता एवं रसिकता का गहरा समावेश है ।

(१२) बिहारी जीवन के समस्त क्षेत्रों में प्रतिवादिता से बचकर चले हैं । विरोधी प्रवृत्तियों के बीच सामंजस्य स्थापित करना उनकी बहुत बड़ी विशेषता मानी जा सकती है । डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि, “उनके काव्य में भक्ति और शृंगारिकता का, नीति और उच्छृंखलता का भावात्मकता एवं ऊहात्मकता का, प्राचीनता और नवीनता का अपूर्व सामंजस्य मिलता है ।”

(१३) बिहारी ने प्रेम विकास की विभिन्न अवस्थाओं का बहुत ही मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है ।

(१४) डा० हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में, नायिका की विविध मुद्राओं, चेष्टाओं, व्यापारों और अनुभावों के चित्रण में बिहारी अनुपम हैं ।

सफलता एवं लाकाप्रयता क कारण—काव्यगत विशषताए

- (१५) चित्रमयता उनके काव्य का प्रमुख गुण है डा० शर्मा के शब्दों में “पूरी सतसई रमणी की विभिन्न मुद्राओं के अनेक चित्रों का एक सुन्दर अल-बम कही जा सकती है।^१”
- (१६) बिहारी ने अन्धानुसरण कहीं नहीं किया। इनके अनुसरण में मौलिकता है।

दोष दर्शन—इतनी विषेयताएँ होते हुए भी बिहारी की कविता में कतिपय दोष दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—

- (१) इन्होंने वियोग की व्यथा की थाह लेने के स्थान पर ताप की नाप-जोख की है। अतः ये वर्णन विशेष रस-व्यञ्जक नहीं हो सके हैं।
- (२) आचार्य शुक्ल के मतानुसार बिहारी में मार्मिक प्रभाव का अभाव है। “पर जो हृदय के अन्तस्थल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव भी स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता। × × × मार्मिक प्रभाव का विचार करें तो देव और पद्माकर के कवित्त सर्वयों का सा गूँजने वाला प्रभाव बिहारी के दोहों का नहीं पड़ता।”
- (३) डा० गणपति चन्द्र गुप्त के मतानुसार, “उन्होंने बहुत से ऐसे दोहे भी लिखे हैं जिनमें न भावना का स्फुरण है, न ही काव्य का कोई चमत्कार है, उनकी रचना का उद्देश्य एक मात्र इन अंगों की पूर्ति करने के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। × × × उन्होंने कई दोहों में एक ही विषय की पुनरावृत्ति रीति के सूक्ष्म-भेदों की पूर्ति के निमित्त की है।”
- (४) बिहारी की प्रेम-भावना उच्च भूमि पर नहीं पहुँच पाती है, वह नीचे ही रह जाती है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि, “भावों का बहुत उत्कृष्ट और उदात्त स्वरूप बिहारी में नहीं मिलता।”

-
1. बिहारी के बारे Imperial Gaggerter में लिखा है कि Whose (Bihari's) collection of seven hundred detached verses is one of the daintiest pieces of art....act.,

- (५) कही-कही विभक्ति का स्पष्ट उल्लेख न होने से अर्थ में कुछ अव्यवस्था आ गई है। परन्तु यह कोई बड़ा दोष नहीं है। जरा सा ध्यान देते ही, अर्थ स्पष्ट हो जाता है। (३४५)
- (६) बिहारी के कुछ दोहे दृष्टकूटक दोहों की श्रेणी में आते हैं। क्रिया-चतुरा के उदाहरणों में कही-कहीं कल्पना का विशेष सहारा लेना पड़ता है। इन दोहों के अर्थ कई प्रकार से किए जाने का मूल कारण यही है कि ये उदाहरण ऐसे हैं जो सूक्ष्म, पिहित आदि अलंकारों में आते हैं।
- (७) एक-दो स्थलों पर अधिक पदत्व दोष पाया जाता है—

लपटी पुहुप-पराग-पट सनी स्वेद मकरन्द ।

आवति, नारि नवोड़ लौं, सुखद वायु गतिमन्द ॥३६२॥

यहाँ पुहुप शब्द अनावश्यक है।

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसी प्रकार एक स्थान पर पतत्प्रकर्ष दोष का भी उल्लेख किया है। (५२२)।

(८) एक स्थान पर 'दुष्क्रम' दोष पाया जाता है। (५७४)

(९) उपमेय-उपमान के लिए एवं वचन सम्बन्धी विपणय के दोष भी कहीं-कहीं आगए हैं—

रह्यो ऐंचि अंतु न लहे अवधि दुसासन बीर ।

आली ! बाढ़तु बिरहु ज्यों पंचाली कौ चोर ॥४००॥

अवधि उपमेय है और दु.सासनु उपमान। ये क्रमशः स्त्रीलिंग और पुलिंग हैं। इनमें रूपक-बाँधना एक प्रकार का अलंकार दोष है।

इन समस्त दोषों पर विचार करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये दोष बहुत ही साधारण हैं और अन्य कवियों में बहुतायत से पाये जाते हैं और तो और ये दोष गोस्वामीजी में पाए जाते हैं।

यथा—

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी ।

मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥

निष्कर्ष :

इसमें रोष पुलिंग का रूपक स्त्रीलिंग नदी से बाँधा गया है।

बिहारी की कविता में बहुत से लोगों ने व्यर्थ ही दोष दिखाने का प्रयत्न किया है। पं० पद्मसिंह शर्मा ने इनका निराकरण बड़े ही रोचक ढंग से किया है।

प्रो० विश्वनाथ मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि, 'निरंकुशाः' कवयः" वाली बात ही अगर मान लें तो न जाने कितने दोषों का परिहार हो जाए। × × × यदि केवल परम्परा से ही मिलान कर लिया जाए तो बिहारी की कविता में निकाले जाने वाले कितने ही दोषों का परिहार हो जाता है। × × × इन सब विचारों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बिहारी की कविता एक प्रकार से बहुत निर्दोष है।

महत्त्व तथा हिन्दी काव्य जगत में स्थान

(क) महत्त्व—बिहारीलाल के महत्त्व का अनुमान केवल एक इसी बात से लगाया जा सकता है कि Imperial Gazetteer में हिन्दी के केवल तीन कवियों की चर्चा हुई है—तुलसी, मूर और बिहारी। बिहारी के विषय में उसमें लिखा है कि “Satsaiya” is one of the daintiest pieces of in any Indian language अर्थात् बिहारी की सतसई × × × भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक लालित्यपूर्ण कला-सृष्टि है।”

बिहारी के महत्त्व के सम्बन्ध में अनेक आलोचक विद्वानों ने विचार किया है। इनके मतों के आधार पर निष्कर्ष रूप में बिहारी के महत्त्व सम्बन्धी निम्न-लिखित बातें ध्यान में रखने योग्य हैं—

(१) “ऋंगार काव्य के ग्रन्थों में जितनी व्याप्ति और जितना मान “बिहारी-सतसई का हुआ उतना और किसी का नहीं। इसका एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है। इसकी पचासों टीकाएँ रची गई। × × × जितने श्रम और जितनी सावधानी से यह सम्पादित हुआ है आज तक हिन्दी का और कोई ग्रन्थ नहीं हुआ।”^१

“इनका एक-एक दोहा टकसाली और अनमोल रत्न है। × × × उनके भाव, भाषा और शैली सभी को अनेक उत्तरवर्ती कवियों ने किसी न किसी रूप में अपनाया। कितने ही कवियों को सतसई लिख कर यश अर्जन करने का लोभ हुआ। × × × बिहारी सतसई का अनुवाद (संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू गुजराती आदि भाषाओं में हो चुका है। सतसई के अतिरिक्त हिन्दी की किसी भी पुस्तक को संस्कृत में अनूदित होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।”^२

(२) “मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा है। × × × इनके दोहे क्या हैं, रस की छोटी-छोटी पिचकारियाँ हैं। वे मुँह से छूटते ही श्रोता का सित्त कर देते हैं।”^३

१, ३. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास।

२, डा० हरवंशलाल शर्मा।

अर्थ गांभीर्य की दृष्टि से बिहारी निःसन्देह हिन्दी के मुक्तककारों में सर्व-श्रेष्ठ हैं ।

(३) अनुभावों और हावों की ऐसी सुन्दर योजना कोई शृंगारी कवि नहीं कर सका है ।”^१

(४) “बिहारी ने चमत्कार और रस का जैसा समन्वय किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है ।”

(५) रम राज का जितना सुन्दर अभिव्यंजन बिहारी सतसई में हुआ है, उतना अन्यत्र नहीं । इसे शृंगार की कविता कहा जाए या कविता का शृंगार ।^२

जो कोऊ रसरीति को समुझै चाहै सार ।

पढ़ै बिहारी सतसई कविता को सिंगार ॥^३

(६) पं० पद्मसिंह शर्मा ने संजीवन भाषा की भूमिका में लिखा है कि, “ब्रज-भाषा के साहित्य में बिहारी-सतसई का दर्जा बहुत ऊँचा है । अनूठे भाव और उत्कृष्ट काव्य गुणों की वह खान है, व्यंग्य और ध्वनि का आकार है । संस्कृत कवियों में कवि कुलगुरु कालिदास जिस प्रकार शृंगार रस-वर्णन, प्रसाद-गुण, उपमालंकारादि के कारण सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं उसी प्रकार हिन्दी-कवियों में महाकवि बिहारीलालजी का आसन सबसे ऊँचा है । शृंगार-रस वर्णन, पद-विन्यास-चातुरी, माधुर्य, अर्थ-गांभीर्य, स्वाभावोक्ति और स्वाभाविक बोलचाल आदि गुणों में वह अपना जोड़ नहीं रखते ।” डा० हरवंशलाल शर्मा ने भी उनको रीतिकाल का कालिदास कहा है । “कालिदास की भाँति बिहारी भी व्यंजित करते हैं, कहते नहीं ।”

(७) विदेशी समालोचकों ने भी इसी प्रकार मुक्त कण्ठ से बिहारी के महत्त्व को स्वीकार किया है—

(i) Beharilal has been called the Thompson of India,
× × × I know nothing like his verses in any
European language (डा० ग्रियर्सन, लाल चन्द्रिका भूमिका)

(ii) The most celebrated Hindi writer in connection

with the art of poetry is Behari chanbey' × × × The work of Beharilal is a triumph of skill and of felicity in expression (A History of Hindi literature, F. E. Key)

- (८) प्रो० विश्वनाथप्रसाद ने लिखा है कि, 'प्रेम के भीतर उन्होंने (बिहारी ने) सब प्रकार की सामग्री, सब प्रकार के वर्णन प्रस्तुत किये और वे भी इन्हीं सात सौ दोहों में ही । × × × नायिका भेद या शृंगार का लक्षण लिखने वाले भी किसी नायिका या अलंकार आदि का वैसा साफ उदाहरण प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हुए, जैसा बिहारी ने किया है । × × × उनकी जोड़ का हिन्दी में कोई दूसरा कवि नहीं हुआ । क्योंकि मुक्तकों में जो-जो विशेषताएँ होनी चाहिए वे बिहारी में सबसे अधिक मात्रा में पाई जाती हैं । दुराग्रह करने वालों की दवा ही क्या है !' (बिहारी की वाग्विभूति)

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' के अन्तर्गत बिहारी का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि, "रीतिकाल के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि बिहारीलाल थे ।"

निष्कर्ष :

- (१) बिहारी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं ।
- (२) हिन्दी में सतसई लिखने की परम्परा को बिहारी ने बद्धमूल किया ।
- (३) उनका शृंगार-वर्णन बहुत उच्च कोटि का है । अन्य शृंगारी कवियों की अपेक्षा उनमें अश्लीलता बहुत कम है ।
- (४) बिहारी सतसई की टीकाएँ सबसे अधिक लिखी गई तथा रामचरित मानस के बाद वह हिन्दी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है ।
- (५) बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे ।
- (६) बिहारी ने शृङ्गार-रस के समस्त अंगों का वर्णन किया है । नायिका-भेद के उदाहरणों की दृष्टि से वे विशेष सफल हुए हैं ।
- (७) मुक्तक काव्य की समस्त विशेषताएँ उनके दोहों में चरम-उत्कर्ष को प्राप्त हुई हैं । मुक्तक काव्य की समस्त विशेषताएँ बिहारी में उपलब्ध हैं ।
- (८) परवर्ती कवियों पर बिहारी का व्यापक प्रभाव पड़ा है ।

(६) कालिदास और बिहारी के व्यक्तित्व में बहुत कुछ साम्य है। बिहारी को हिन्दी के रीतिकाल का कालिदास सहज ही कहा जा सकता है।

(ख) हिन्दी काव्य जगत में स्थान—मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी की कविता में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने तो एक यही वाक्य लिखकर बिहारी के महत्त्व का प्रतिपादन कर दिया तथा हिन्दी साहित्य में उनके स्थान का निर्देश भी कर दिया। परन्तु अन्य समालोचक विद्वानों ने इस पर कुछ अधिक विस्तार से विचार किया है यथा—

लाला भगवान दीन ने लिखा है कि, 'बिहारी हिन्दी का चौथा रत्न है (तुलसी, सूर और केशव के बाद)।

श्री राधाचरण गोस्वामी ने बिहारी का स्थान सर्वोपरि मानते हुए लिखा है कि, "यदि सूर-सर, तुलसी ससी, उडुगन केशवदास है" तो बिहारी पीयूष-वर्षी मेघ है, जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है। × × × फिर बीच-बीच में जो लोकोत्तर भावा की विद्युत चमकती है वह हृदयच्छेद कर जाती है।"

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बिहारी जानकारी का मूल्यांकन करते हुए निष्कर्ष रूप में लिखा है कि, "इतनी विस्तृत जानकारी और उसका उपयोग करने की ऐसी क्षमता रखने वाला दूसरा कवि हिन्दी में नहीं दिखाई पड़ता।"

उपसंहार के अन्त में मिश्र जी ने लिखा है कि, "इसमें सन्देह नहीं कि मुक्तक रचना करने वालों में बिहारी सबसे श्रेष्ठ है। × × × बिहारी का यश अजर और अमर है।"

डा० हरवंश लाल शर्मा—"शृङ्गारिक सतसई की परम्परा हिन्दी में बिहारी से प्रारम्भ हुई। × × × हमारा स्पष्ट मत है कि बिहारी का हिन्दी में बहुत ऊँचा स्थान है और शृङ्गारिक मुक्तककारों में वे निःसन्देह सर्वश्रेष्ठ हैं।"

डा० रामसागर त्रिपाठी, "रामचरित मानस को अपने धार्मिक पुट के कारण सर्वसाधारण में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई पर बिहारी सतसई को अपनी रसात्मकता, कलात्मकता, ध्वनि तथा चमत्कार इत्यादि काव्य-तत्त्वों की प्रधानता के कारण कवियों तथा आलोचकों को अपनी ओर आकर्षित करने का अधिक सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

निष्कर्ष :

बिहारी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ मुक्तककार एवं सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। “प्रबन्ध काव्यों में रामचरितमानस की जो प्रतिष्ठा है वही मुक्तक के क्षेत्र में बिहारी सतसई को प्राप्त हुई है।”

आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा के शब्दों में सतसई और उसके टीकाकारों को लक्ष्य में रख कर ही मानो कवि ने पर्याय से यह कहा है—

लिखन बैठि जाकी सविहि, गहि गहि गरब गरूर।

भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥३४७॥

कोई भी टीकाकार-चितेरा अपने अनुवाद-चित्र द्वारा बिहारी की कविता कामिनी के अलौकिक लावण्यभरित भाव-सौन्दर्य को यथार्थतया अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सका, सब खाली खाके खीचकर ही रह गए।”

(पृ० सं० ११ बिहारी की सतसई, भाग—१ चतुर्थ संस्करण)

डा० विजयेन्द्र स्नातक के द्वारा किए गये बिहारी के मूल्यांकन के अनुसार, “हिन्दी रीति परम्परा में बिहारी ध्वनि सम्प्रदाय के समर्थकों में प्रमुख हैं। तुलसी के रामचरितमानस के बाद सतसई अपनी रसात्मकता, कलात्मकता, लाक्षणिकता और वचन विदग्धता के कारण रसिकों का सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हुई। बिहारी अपने युग में रीतिशृङ्गार के क्षेत्र में युग-प्रवर्तक के रूप में अवतरित हुए थे। बिहारी ने ध्वनिकाव्य को स्वीकार कर रस और अलंकार का पूर्ण निर्वाह करते हुए शृङ्गार को प्रत्येक परिष्कृत भूमि पर अवस्थित किया और रीतिवद्ध काव्य कवियों को आचार्यों के सामने गौरव पूर्ण स्थान दिलाया। × × × बिहारी का काव्य सभी दृष्टियों में अनुपम प्रतीत होता है।”

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. “बिहारी की भाव-व्यञ्जना और उक्ति-वैचित्र्य” शीर्षक निबन्ध लिखिए ।
(अध्याय ७ और १४)
२. “बिहारी के भाव-पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष, दोनों में एक ऐसी सुरुचि परिलक्षित होती है जो उनकी रचनाओं के कलात्मक प्रभाव की अभिवृद्धि में असाधारण रूप से सहायक हुई है ।” उदाहरण देते हुए इस मत का स्पष्टीकरण कीजिए ।
(अध्याय १४)
३. “मतमइया के दोहरे ज्यों नावक के तीर देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर ।” बिहारी-संग्रह के आधार पर उपर्युक्त कथन की साक्षर्यता सिद्ध कीजिए ।
(अध्याय १४ और १६)
४. “बिहारी में नूतन उद्भावना शक्ति है और साथ ही भाषा पर भी उसका पूर्ण अधिकार है ।” बिहारी की रचना से उदाहरण देकर इस कथन को सिद्ध कीजिए ।
(अध्याय ५ तथा १६)
५. “बिहारी के काव्य में भक्ति और शृङ्गारिकता का, नीति और उच्छृंखलता का, भावात्मकता एवं ऊहात्मकता का, नवीनता का अपूर्व सामंजस्य मिलता है ।” इस कथन की विवेचना कीजिए ।
(अध्याय ७, १७)
६. बिहारी सतसई की लोक-प्रियता के कारणों पर प्रकाश डालिए ।
(अध्याय १७)
७. बिहारी के साहित्यिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।
(अध्याय १८)
८. “बिहारी के व्यक्तित्व में प्रतिभा, अध्ययन और अभ्यास तीनों का समन्वय मिलता है ।” उक्त कथन की समीक्षा कीजिए ।
(अध्याय १७)

- ६ “बिहारी अनिवादिता से बच कर चलने वाले व्यक्ति थे। वे दो विरोधी प्रवृत्तियों के बीच भी सामंजस्य प्रस्तुत करते हुए अपने लिए मार्ग बना सकते थे।” बिहारी-सतसई की लोकप्रियता में उक्त प्रवृत्ति कहाँ तक सहायक सिद्ध हुई है। (अध्याय १६, १७)
१०. “बिहारी ने मानव-जीवन के विविध अंगों पर ध्यान नहीं दिया है, उनका ध्यान काव्य के विविध अंगों पर रहा है।” इस कथन की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए। (अध्याय ६)
११. “बिहारी रीति बद्ध और घनानंद रीति-मुक्त कवि हैं।” इस कथन की समीक्षा कीजिए। (अध्याय ६)
१२. रीतिकाव्य किसे कहते हैं ? इस श्रेणी के काव्यों के मुख्य लक्षण लिखते हुए बताइए कि बिहारी को आप रीति-कवि कह सकते हैं या नहीं। (अध्याय ४)
१३. बिहारी ने यद्यपि किसी लक्षण-बद्ध ग्रन्थ की रचना नहीं की, फिर भी उनकी गणना रीतिबद्ध कवियों में की जाती है—ऐसा क्यों ? (अध्याय ६)
१४. बिहारी की शब्द-साधना के मूल तत्त्वों का उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए। (अध्याय १४)
१५. बिहारी की रस-व्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों के विधान में दिखाई पड़ता है। अविक स्थलो पर तो इनके उक्ति-कौशल के ही दर्शन होते हैं।” समीक्षा कीजिए। (अध्याय १४)
१६. बिहारी के कलापक्ष पर अपने विचार प्रकट कीजिए। (अध्याय १४)
१७. बिहारी के प्रकृति चित्रण पर एक निबन्ध लिखिए। (अध्याय १३)
१८. सतसई परम्परा का ऐतिहासिक विकास दिखलाते हुए बिहारी सतसई का स्थान तथा मूल्य निर्धारित कीजिए। (अध्याय ५, और १७)
१९. “रीति-ग्रन्थों के पहाड़ में सूफ़ियों से प्रभावित साहित्यांश दबा पड़ा है।” इस उक्ति को बिहारी पर चरितार्थ करते हुए सूफ़ी प्रभाव का उद्घाटन कीजिए। (अध्याय ४)
२०. शृङ्गार रस के ग्रन्थों में बिहारी सतसई को जो अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है उसका विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिए। बिहारी की सफलता का कारण भी बताइए। (अध्याय १७)

२१. किन परिस्थितियों के कारण बिहारी जैसे कवि का जन्म सम्भव हुआ और उनकी कविता का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ?
(अध्याय १, ५)
२२. रीतिकालीन, शृङ्गारी कवियों में 'बिहारी' का स्थान निर्धारित कीजिए ।
(अध्याय १८)
२३. ब्रजभाषा काव्य—परम्परा का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसमें बिहारी की रचना के महत्त्व पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए ।
(अध्याय ४ और १८)
२४. बिहारी—समीक्षा के क्षेत्र में प्राप्त बिहारी सम्बन्धी साहित्य का ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक विवरण दीजिए ।
(अध्याय ३)
२५. युक्तिपूर्वक उदाहरण देते हुए प्रमाणित कीजिए कि बिहारी ने जो प्रवृत्ति और मानव-स्वभाव का वर्णन किया है वह बहुत ही श्रेष्ठ है, मौलिक और चित्ताकर्षक है ।
“तुलसी और बिहारी अन्तःप्रकृति के निपुण निरीक्षक हैं,” उपर्युक्त मत की पुष्टि करते हुए इन दोनों के पर्यवेक्षण को स्पष्ट कीजिए ।
(अध्याय ७ और ८)
२६. मुक्तककार की दृष्टि से बिहारी की तुलना सूरदास से कीजिए ।
(अध्याय १६)
२७. शुक्लजी का कथन है कि जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समान शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा । इस कसौटी पर बिहारी की कविता को कसकर इस दिशा में उनकी क्षमता का दिग्दर्शन कराइए ।
(अध्याय १६)
२८. बिहारी में वाग्वैदग्ध्य और क्षणिक कार्यों को सूत्र रूप में चित्रित करने के अतिरिक्त महाकवि के लिए अपेक्षित गुणों का अभाव है । उपर्युक्त विवेचना कीजिए ।
(अध्याय १४)
२९. सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर” वाली उक्ति से आप कहाँ तक सहमत हैं । उपर्युक्त उदाहरण देकर अपने मन की पुष्टि कीजिए ।
(अध्याय ७ और १४)

३०. बिहारी की रचना में श्रेष्ठ मुक्तक काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। उपयुक्त उदाहरण देते हुए इस कथन को सिद्ध कीजिए। (अध्याय १६)
३१. भावों का बहुत उत्कृष्ट और उदात्त स्वरूप बिहारी में नहीं मिलता। उनकी कविता शृंगारी है, पर प्रेम की उच्च भूमि पर नहीं पहुँचती, नीचे रह जाती है।” आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त मत की समीक्षा कीजिए। (अध्याय ७, ६ और १०)
३२. बिहारी और घनानन्द के विरह-वर्णन की तुलना कीजिए। (अध्याय ८)
३३. बिहारी की जीवनी पर प्रकाश डालते हुई बताइए कि उनको केशवदास का पुत्र मानना कहाँ तक युक्ति-युक्त है। (अध्याय २)
३४. बिहारी की भक्ति-भावना क्या एक सच्चे भक्त की भावना है? यदि नहीं तो क्यों? (अध्याय १०)
३५. “बिहारी की जातीय-भावना ने उन्हें प्रशस्ति-काव्य में संयमित रहने की प्रेरणा प्रदान की।” इस कथन की समीक्षा कीजिए। (अध्याय ११)
३६. बिहारी के जीवन-दर्शन को स्पष्ट कीजिए। (अध्याय १२)
३७. बिहारी की बहुज्ञता पर प्रकाश डालिए। (अध्याय १५)
३८. बिहारी को रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में रखना कहाँ तक युक्ति सम्मत है! इस सम्बन्ध में अपना तर्कपूर्ण एवं सोदाहरण उत्तर प्रस्तुत कीजिए। (अध्याय ४)

सहायक-ग्रन्थ सूची

- (१) रीतकाल और देव.....डा० नगेन्द्र ।
- (२) हिन्दी साहित्य के भक्ति और रीतिकालों में प्रकृति और काव्य—
डा० रघुवंश सहाय वर्मा ।
- (३) रीतिकालीन काव्यों की प्रेम-व्यंजना—डा० बच्चन सिंह ।
- (४) हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य—डा० सत्यदेव चौधरी ।
- (५) रीतिकालीन काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध—डा०
(कुमारी) उमा मिश्र ।
- (६) मुक्तक कवि परम्परा के अन्तर्गत बिहारी का विशेष अध्ययन—डा०
रामसागर त्रिपाठी ।
- (७) रीत कविता का आधुनिक हिन्दी कविता पर प्रभाव—डा० रमेश
कुमार शर्मा ।
- (८) हिन्दी काव्य में अन्योक्ति—डा० संसारचन्द्र महोत्रा ।
- (९) हिन्दी काव्य में शृङ्गार-परम्परा और महाकवि बिहारी—डा०
गणपतिचन्द्र गुप्त ।
- (१०) हिन्दी कविता (१६००-१८५०) में शृङ्गार रस का अध्ययन—डा०
राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ।
- (११) बिहारी की वाग्विभूति—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।
- (१२) बिहारी सतसई—श्री देवेन्द्र शर्मा ।
- (१३) हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
- (१४) हिन्दी नवरत्न—मिश्रबन्धु ।
- (१५) बिहारी और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा ।
- (१६) बिहारी मीमांसा—डा० रामसागर त्रिपाठी ।
- (१७) बिहारी रत्नाकर—जगन्नाथ दास रत्नाकर ।
- (१८) बिहारी की सतसई—पं० पद्मसिंह शर्मा ।

- (१६) बिहारी और देव—ला० भगवान दीन 'दीन' ।
 (२०) हिन्दी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुन्दर दास ।
 (२१) हिन्दी साहित्य—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।
 (२२) कविवर बिहारी—श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ।
 (२३) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—षष्ठ भाग, सम्पादक—डा०
 नगेन्द्र ।
-

